लखनऊ विश्वविद्यालय बी.ए. तृतीय वर्ष
संस्कृत की निर्धारित पाठ्यपुस्तक

वेदगौरवम्

प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ

वेदगौरवम्

लखनऊ विश्वविद्यालय बी.ए. तृतीय वर्ष संस्कृत के लिए
निर्धारित पाठ्यपुस्तक प्रथम प्रश्न पत्र

सम्पादक

अध्यक्ष
संस्कृत तथा प्राकृत भांषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रकाशन केन्द्र
डालीगंज रेलवे क्रॉसिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ – 226 020
☎ (0522) : 2367314, 2367373

■ प्रकाशक : प्रकाशन केन्द्र
डालीगंज रेलवे क्रॉसिंग,
सीतापुर रोड, लखनऊ – 226 020
☎ (0522) : 2367314, 2367373

■ मूल्य : तीस रुपये पचास पैसे (Rs. 30.50) मात्र।

मन्त्र: मननात्

प्राक्कथन

राजर्षि मनु के अनुसार भगवान् वेद देवताओं, पितरों और मनुष्यों सभी के सनातन नेत्र हैं। उनकी रचना किसी व्यक्तिविशेष की सामर्थ्य से परे है। उनके स्वरुप का परिमापन भी जन सामान्य की क्षमता से परे है–

पितृदेव मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः।।

(मनुस्मृति १२/९४)

वेद के इसी गौरव का बोध स्नातकस्तरीय छात्रों को कराने के लिए इस संकलन को तैयार किया गया है। इसमें चार सूक्त और एक ऐतरेय ब्रह्मण का अंश संकलित है। इनमें श्रद्धा सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल से उद्धृत है। संकलित तीन मन्त्रों में यह निरुपित है कि जीवन के प्रत्येक कार्य–कलाप के संपादन में श्रद्धा, जो एक मानसिक स्थिति है, कितनी आवश्यक है। दूसरा सूक्त 'विश्वेदेवाः' संज्ञक है। यह ऋग्वेद के सप्तम मण्डल से गृहीत है। इसमें विभिन्न, बल्कि सभी देवों से शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। आज के तनाव, टकराव और आतंक के वातावरण में शान्ति सर्वाधिक काम्य और उपादेय है, इसलिए इस सूक्त की उपयोगिता असन्दिग्ध है। मण्डूक सूक्त का परिचय आगे दी गई भूमिका में विस्तार से प्रदत्त है। पृथिवीसूक्त अथवा भूमिसूक्त अथर्ववेद के १२वें काण्ड से अवतरित है। यह वास्तव में प्राचीन वैदिक भारत का राष्ट्रगीत है, जिसमें मूलतः ६५ मन्त्र हैं। इसी सूक्त में पहली बार भारत भूमि को माता कहा गया है, प्रत्येक भारतवासी जिसका पुत्र है– 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' राष्ट्र के धारक तत्त्व कौन–कौन से हैं, हमारे प्रतापी और पराक्रमी पूर्वजों ने इस राष्ट्र की रक्षा किस प्रकार जागरूक रहकर की थी, इस भूमि पर कितना पन्थवैभिन्न्य और भाषावैविध्य है, इसका भौगोलिक स्वरूप कितना विविधतापूर्ण है– इन्हीं

सबका निरुपण इस सूक्त में किया गया है। यह सूक्त निश्चय ही हमारे नवयुवकों में राष्ट्रभक्ति का उत्कट सन्निवेश कराने में समर्थ है।

इसी क्रम में, अन्त में 'ऐतरेय ब्राह्मण' के 'ऐन्द्रमहभिषेक' प्रकरण से 'चरैवैति, चरैवैति' शीर्षक कुछ गाथाओं को भी सम्मिलित कर दिया गया है, जो छात्रों में कर्मठता का संचार करने में निश्चित ही समर्थ हैं।

आशा है, यह संकलन जिनके लिए प्रायोजित है, उनके लिए अत्यन्त हितकर सिद्ध होगा। इसे तैयार करने में हमें जिन सहयोगियों का सहयोग प्राप्त हुआ, उन सबके प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

पुस्तक के कमनीय प्रकाशन के लिए मैं प्रकाशन–केन्द्र के उत्साही स्वत्त्वाधिकारी श्री विवेक मालवीय और श्री अभिषेक मालवीय को आशीस् प्रदान करता हूँ।

'इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः पूर्वजेभ्यः पथिकृद्भ्यः।'

प्रो० ओमप्रकाश पाण्डेय
अध्यक्ष,
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

अनुक्रमः

●●●

भूमिका

वेद का स्वरूप और महत्त्व

'वेद' शब्द 'विद्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगने पर निष्पन्न हुआ है; अर्थ है ज्ञान। प्रकृत सन्दर्भ में इसका अभिप्राय ज्ञान की राशि या ज्ञान के संग्रह ग्रन्थ उपयुक्त है। अंग्रेजी में इसके लिए 'विजडम' शब्द का व्यवहार किया जाता है। सायणाचार्य के अनुसार इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण का अलौकिक उपाय जो ग्रन्थ बतलाए, वह वेद है —'इष्ट प्राप्त्यनिष्ट परिहारयोरलौकिकमु पायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।' वास्तव में ज्योतिष्टोम यज्ञ करने से अभिलषित प्राप्ति और कलञ्ज भक्षण छोड़ देने से अनिष्ट का निवारण होगा, इसका ज्ञान न तो किसी प्रत्यक्ष विधि से सम्भव है और ना ही कोई मूर्द्धन्य तार्किक सहस्रों अनुमानों से भी यह जान सकता है। यह तो केवल वेद ही बतला सकता है —

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

वेद को 'श्रुति', 'त्रयी', 'छन्दस्' और 'निगम' भी कहा जाता है। गुरुमुख से सुनकर स्मरण कर लेने की पद्धति से ही परम्परा ने इसे सुरक्षित रखा है, श्रवण मात्र से ही प्राप्त होने के कारण इसे 'श्रुति' नाम दिया गया है। यास्क के अनुसार 'निगम' का अर्थ अर्थयुक्त है। यह नाम वेदों की गम्भीर अर्थवत्ता पर बल देता है। 'त्रयी' नाम रचना-त्रैविध्य के कारण पड़ा। वेद ऋक्, यजुष् और सामन् अर्थात् पद्य, गद्य और गीतिरूप है। 'आम्नाय' और 'स्वाध्याय' नाम भी समय-समय पर वेद के लिए प्रचलित होते रहे हैं।

वैदिक साहित्य के महत्व के निम्नाङ्कित कारण हैं —

(१) धार्मिक दृष्टि से वेदों का महत्त्व सर्वाधिक है। ये हिन्दू धर्म के मूल स्रोत हैं — 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।' वस्तुतः ये समस्त धर्मों के आदि स्रोत हैं —

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः॥

मनु० २-६

धर्म-जिज्ञासुओं के लिए वेद परम प्रमाण है — 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमंश्रुतिः।' मनु० २-१३।

महर्षि पतञ्जलि ने निष्काम भाव से षडङ्ग वेदों का अध्ययन अनिवार्य बतलाया है — निष्कारणो षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च — (महाभाष्य, पस्पशाह्निक)।

मनु के अनुसार जो द्विज वेदाध्ययन न कर अन्य शास्त्रों का सपरिश्रम अध्ययन करता है, वह जीवित ही शूद्र हो जाता है —

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

(मनु० २—१६८)

(२-३) सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी वेदों का विपुल महत्त्व है। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का निर्माण और उनका नामकरण वेदों से ही हुआ —

सर्वेषां तु स नामानि, कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

(मनु० १-२१)

सामाजिक शिष्टाचार एवं स्वजनों के प्रति कर्तव्यों का ज्ञान भी वेद से होता है।

(४) दार्शनिक दृष्टि से सभी आस्तिक दर्शन अपना मूल स्रोत वेद को बतलाते हैं। वैशेषिक दर्शन में इसीलिए कहा गया है — 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्' (वै० सू० १-१-३)। वाचस्पति मिश्र के अनुसार महाप्रलय में नित्य सर्वज्ञ परमेश्वर वेद का प्रणयन कर सृष्टि के आदि में स्वयं ही विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों का प्रवर्तन करते हैं — 'महाप्रलये तु ईश्वरेण वेदान् प्रणीय सृष्ट्यादौ स्वयमेव सम्प्रदायः प्रवर्त्यत एवेति भावः — (न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका)।

(५) राजनैतिक दृष्टि से भी वेदों की निरवधि गरिमा है। वेदों में राष्ट्ररक्षा, उसके विविध उपायों, विभिन्न शासन प्रणालियों, संस्थाओं और सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए वैदिक वाङ्मय में 'सभा' और 'समिति' सदृश जन-आकांक्षाओं को पुरस्कृत करने वाली प्रतिनिधि संस्थाओं की उपयोगिता पर विशेष बल दिया गया है।

(६) ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय इतिहास के आदि काल के ज्ञान के लिए ही नहीं, विश्व-इतिहास के महत्त्वपूर्ण तथ्यों के परिज्ञान के लिए भी वेदों की अति उपादेयता है। नदियों, दाशराज्ञ-युद्ध, राजाओं और समुदायों के विषय में अनेक सङ्केत वेदों में बिखरे पड़े हैं।

(७) आर्थिक नीतियों और सिद्धान्तों के निर्धारण की दिशा में भी हमें वेदों से मार्ग-दर्शन प्राप्त हो सकता है। अर्थ-व्यवस्था में समाजवाद, साम्यवाद या पूँजीवाद के स्थान पर धर्मानुगत

दृष्टि का प्राधान्य वैदिक वाङ्मय में दिखलायी देता है। वेदकालीन अर्थ-व्यवस्था में मनुष्य के कार्यों का निर्धारण बहुत सुदृढ़ आधार पर था। शोषण और शोषकों के दमन का वहाँ बहुत कठोर विधान है।

(८) भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिए भी वैदिक साहित्य में प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है।

(९) काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से भी वेदों का अध्ययन अपरिहार्य है। औपम्यगर्भ अलंकारों के अकृत्रिम रूप, सहज नाद-सौन्दर्य, छन्दों के लयात्मक और गत्यात्मक निखार का अनुशीलन वेदों के माध्यम से ही ज्ञात किया जा सकता है।

(१०) सम्प्रति म० म० मधुसूदन ओझा, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी और मोतीलाल शर्मा आदि के द्वारा निर्दिष्ट पद्धति से वेदों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी अध्ययन किया जा रहा है।

(११) तुलनात्मक देवशास्त्र और पुराण-कथाओं की दृष्टि से — इनके विश्लेषण में भी वेदों के अध्ययन से विपुल सहायता मिल रही है।

अतः वेदों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है — 'तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' (शत० ब्रा० ११-५-६१)।

वेदों की रचना और रचनाकार

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार वेदों की रचना किसी व्यक्ति विशेष ने नहीं की; मन्त्रों के साथ जिन ऋषियों के नाम मिलते हैं, वे वस्तुतः उनके द्रष्टा हैं, रचयिता नहीं। ये द्रष्टा अथवा ऋषि अतीन्द्रिय अर्थ का साक्षात्कार करने वाले हैं — अतीन्द्रियार्थद्रष्टारो हि ऋषयः' — (सायण)।

तथा — युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्व्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥

यास्क का कथन है — 'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः' — (निरुक्त १—२)।

जैमिनि के आख्याप्रवचनात्' (मी० सू० 1-1-30) के अनुसार मंत्रों से सम्बन्द्ध नाम प्रवचनकारों या प्रवक्ताओं के हैं, न कि रचयिताओं के; किन्तु कुछ पाश्चात्य विद्वान् इस विचार से सहमत नहीं हैं। वे वेदों को ऋषियों के द्वारा प्रणीत (Composed) ही मानते हैं।

इस विषय में एक पक्ष और हैं, जो वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र प्राप्य कुछ अन्तः सङ्केतों को महत्त्व देता है। तदनुसार विराट् पुरुष के मानस यज्ञ से ऋक्, यजुष् और साम की उत्पत्ति हुई —

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

शतपथ ब्राह्मण में वेदों को परमपुरुष का निःश्वास बतलाया गया है — 'एवं वा अरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।'[१] वहीं एक स्थल पर इन्हें अग्नि आदि देवों से उत्पन्न कहा गया है — 'तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः।'[२]

जहाँ तक भारतीय दर्शनों का प्रश्न है, कुछ दार्शनिक सम्प्रदाय वेदों को ईश्वरकृत मानते हैं, किन्तु कुछ ईश्वर को भी वेद का रचनाकार नही मानते। नैयायिक और वैशेषिक मतानुयायी वेदों को ईश्वर की कृति कहते हैं, जबकि मीमांसक इसके प्रवल विरोधी हैं। इनकी दृष्टि में वेद सर्वथा अपौरुषेय हैं।

वेदों की अपौरुषेयता-पक्ष-विपक्ष

भारतीय दार्शनिकों के मध्य यह विषय चिरकाल से विवाद का आस्पद रहा है। इस विषय में दोनों पक्षों के तर्क ये हैं —

पौरुषेयवादियों के तर्क — (१) वेद-कर्त्ताओं के नाम प्राप्त होते हैं[३] जैसे वाल्मीकि के द्वारा रची गई रामायण 'वाल्मीकीय' कहलाती है, उसी प्रकार से 'काठक संहिता' का अभिप्राय है कठ के द्वारा रचित संहिता।

(२) वेद में जनन-मरणशील और अनित्य प्राणियों के नाम मिलते हैं, यथा — 'ववरः प्रावहणिरकामयत्' (तै० सं० ७–१–१०–२) यहाँ प्रवहण के पुत्र ववर का उल्लेख है अतः वेद की रचना ववर नामक व्यक्ति के वाद हुई।[४] (३) वेद में कहीं वनस्पतियों के और सर्पों के सत्र करने का उल्लेख है, जो सम्भव नहीं है। अतः प्रतीत होता है कि किसी पागल व्यक्ति ने वेदों की रचना की।

अपौरुषेयवादियों के तर्क — (१) वेद-मन्त्रों के साथ मिलने वाले नाम रचयिताओं के नहीं हैं, ये नाम उनके हैं जिन्होंने सर्वप्रथम मन्त्र-संहिताओं का उपदेश दिया।[५] (२) ववर आदि नाम अनित्य प्राणियों के नहीं है, प्रत्युत यहाँ 'प्रवहण' शब्द से प्रवहण स्वभावशील सामान्य वायु मात्र का निर्देश है।[६] (३) जहाँ तक वनस्पतियों और सर्पों के सत्रानुष्ठान करने की बात है, वह अर्थवाद है। अचेतन प्राणियों ने भी सत्र का अनुष्ठान किया, फिर चेतन और विद्वानों

१— शतपथ ब्राह्मण १४-५-४-१०
२— वही ११-५-२-३
३— वेदांश्चैके सन्निकर्ष पुरुषाख्या — मी० सू० १-१-२७
४— अनित्यदर्शनाच्च — मी० सू० १-१-२८
५— आख्या प्रवचनात् — मीमांसा सूत्र।
६— परं तु श्रु तिसामान्यमात्रम् — वही १-१-३१

का तो कहना ही क्या है? (४) पौरुषेयवादी यदि यह कहें कि बादरायण ने अपने 'शास्त्रयोनित्वात्' सूत्र में ब्रह्म को वेद का कारण बतलाया है तो इससे भी वेद की अपौरुषेयता पर आँच नहीं आती, क्योंकि इससे यह नहीं सिद्ध होता है कि किसी मनुष्य ने वेदों की रचना की।

निष्कर्ष यह कि भारतीय मनीषी वेद को नित्य और सर्वथा अपौरुषेय ही मानते हैं — **'अनादिनिधना नित्या वाक्।'**

वैदिक वाङ्मय का वर्गीकरण

आचार्य आपस्तम्ब ने मंत्र और ब्राह्मण को 'वेद' नाम से अभिहित किया है — 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप० परिभाषा ३१)। आर्य-समाज के अनुयायी केवल मंत्र अर्थात् संहिता भाग को ही वेद मानते हैं, ब्राह्मणों को नहीं। यास्क के अनुसार मन्त्र मनन करने से निष्पन्न हुए — **'मंत्रा मननात्'** (निरुक्त)। सायणाचार्य ने अनुष्ठान का स्मरण कराने वाले वचनों को मंत्र माना है — **'याज्ञिक समाख्यानस्य निर्दोषलक्षणत्वात्। तच्च समाख्यानम् अनुष्ठानस्मारकादीनां मन्त्रत्वं गमयति'** — (ऋग्भाष्य भूमिका)। यज्ञ में प्रवृत्त करने वाले वचनों को ही जैमिनि ने भी 'मन्त्र' कहा है — 'तच्चोदेकषु मन्त्राख्या।' यहाँ संक्षेप में 'मन्त्र' का आशय है वेद का संहिता भाग।

मन्त्र के अतिरिक्त अन्य भाग को 'ब्राह्मण' कहते हैं। 'ब्रह्म' का अर्थ है 'यज्ञ'। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञ-प्रक्रिया का विस्तार किया गया है।

मन्त्र के प्रकार — रचना-त्रैविध्य के आधार पर मन्त्र तीन प्रकार के हैं — ऋक्, यजुष् और सामन्। इन्हें दूसरे शब्दों में पद्य, गद्य और गान कह सकते हैं। जैमिनि ने ऋक् की परिभाषा दी है — **'तेषामृग् यथार्थवशेन पादव्यवस्था** — (मी० सू० २-१-३५)। तात्पर्य यह है कि अर्थ के अनुसार पाद-व्यवस्था वाले छन्दोबद्ध मंत्र ऋक् या ऋचा हैं। सायण ने इसी की यज्ञपरक और व्युत्पत्तिजन्य मीमांसा यों की है - — 'अर्चनीत्यमुमर्थमृक्छब्द आचष्टे। अर्च्यते प्रशस्यतेऽनया देवविशेषः कियाविशेषस्तत्वसाधनविशेषो वेत्यृक्छब्दव्युत्पत्तिरिति' — अर्थात् किसी देवता, क्रिया या साधन की प्रशंसा करने के कारण ऋचा की सार्थकता है। **'गीतिषु सामाख्या'** (मी० सू० २-१-३६)सूत्र के अनुसार गेय मन्त्र साम हैं। ऋचाओं और सामों के अतिरिक्त शेष मंत्र यजुष् हैं — **'शेषे यजुः शब्दः'** (मी० सू० २-१-३७)

चार संहिताएँ — इन मंत्रों का समूह ही संहिता कहलाता है। ऋग्वेद संहिता में ऋचाओं की अधिकता है, यजुर्वेद में यजुषों की और सामवेद में सामों की। अथर्ववेद में तीनों प्रकार के मंत्र प्राप्त होते हैं, इसलिए उसका नामकरण रचना-विधा के आधार पर न होकर ऋषि (अथर्वा) के नाम पर हुआ है।

'त्रयी' का अभिप्राय — रचना-प्रकार के आधार पर वेद को 'त्रयी' नाम से अभिहित किया जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि पहले तीन ही मन्त्र-संहिताएँ थी और अथर्ववेद परवर्ती है। वस्तुतः चारों संहिताओं में पद्यात्मक, गद्यात्मत्क और गेय — ये तीन प्रकार के मंत्र हैं, इसीलिए रचना विधा के आधार पर वेद को 'त्रयी' कहा जाता है।

चार संहिताएँ, चार ऋत्विक् — संहिताओं का संकलन यज्ञ की दृष्टि से हुआ है। यज्ञ में चार ऋत्विक् होते हैं — होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा। होता ऋचाओं का पाठ करता है, इसीलिए ऋग्वेद 'होतृवेद' भी कहलाता है। अध्वर्यु यजुष मंत्रों का उच्चारण करता है और उद्गाता सामों का गान। ब्रह्मा का कार्य अन्य पुरोहितों के कार्यों का निरीक्षण है, वह 'सर्व-कर्माभिज्ञ' होता है; उसका अपना वेद है अथर्ववेद। एक ऋचा में इन चारों ऋत्विकों के कार्य का उल्लेख इस प्रकार से किया गया है —

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां
यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः॥'

(ऋ० सं० १०-७१-११)

संहिताओं के अतिरिक्त शेषांश ब्राह्मण है। वर्ण्य विषय के आधार पर सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को दो भागों में बाँटा जाता है — कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। संहिताओं और ब्राह्मणों से ही आरण्यक और उपनिषद् भाग भी अधिगृहीत हैं। इस विभाजन का आधार भी विषयगत ही है। संहिताओं और ब्राह्मणों में प्रमुख रूप से कर्मकाण्ड का विवेचन हुआ है तथा आरण्यकों और उपनिषदों में ज्ञान-काण्ड का।

संक्षेप में वैदिक साहित्य के ये ही चार स्तम्भ हैं — १. संहिता, २. ब्राह्मण ३. आरण्यक और ४. उपनिषद्।

इनके अतिरिक्त छह वेदाङ्ग हैं — १. शिक्षा २. कल्प ३. ज्योतिष ४. निरुक्त ५. व्याकरण और ६. छन्द।

वैदिक मन्त्र संहिताएँ

कहा जा चुका है कि रचना-त्रैविध्य होने पर भी मन्त्र-संहिताएँ चार हैं — ऋक् संहिता, यजुर्वेद संहिता, साम संहिता और अथर्ववेद संहिता। सम्भावना यह मानी जाती है कि कदाचित् बहुत पहले, ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना से बहुत पूर्व ऋचाएँ, यजुष्, एवं साम-सभी एकस्थ थे। याज्ञिक प्रयोजनवश कालान्तर से मन्त्रों को अलग-अलग संहिताओं में सङ्कलित किया गया। भारतीय परम्परा इस मन्त्र-विभाग और सङ्कलन का श्रेय वेदव्यास को देती है —

'वेदं तावदेकं सन्तम् अतिमहत्वाद् दुरुध्येयमनेक शाखा भेदेन समाम्नासिषुः।' — सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्तः' — दुर्गाचार्य (निरुक्त पर दुर्ग-वृत्ति, १—२०)

स्मृतियों, महाभारत एवं पुराणों में इस विषय में अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

ऋक् संहिता

वैदिक वाङ्मय में ऋक् संहिता का पाठप्राथम्य विहित है — 'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम् (छा० उप० १-१-५)। तैत्तिरीय संहिता में तो यहाँ तक कहा गया है कि यज्ञ में जो कुछ यजुष् और साममंत्रों से किया जाता है वह शिथिल है, जो ऋचा के द्वारा किया जाता है वह सुदृढ़ है — 'यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद्, यद् ऋचा तद् दृढम् (तै सं ६-५-१०-३)

ऋग्वेद की व्यवस्था और विन्यास (Arrangement)

ऋग्वेद का विभाजन दो प्रकार से किया गया है —१. अष्टक, अध्याय और वर्गों में, सम्पूर्ण ऋग्वेद में आठ अष्टक हैं, प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में कुछ वर्ग हैं। हर वर्ग में पाँच ऋचाओं का अनुपात है। कुल अध्यायों की संख्या है ६४ और वर्गों की २००६ (दो हजार छह)।

२. मण्डल, अनुवाक् और सूक्तों का, सम्पूर्ण ऋग्वेद में दस मण्डल हैं। मण्डलों की इस संख्या के कारण ही ऋग्वेद को 'दाशतयी' भी कहा गया है। प्रत्येक मण्डल कुछ अनुवाकों में विभक्त है; हर अनुवाक के अन्तर्गत कुछ सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त में अनेक ऋचाएँ हैं। ऋक् संहिता में कुल ८५ अनुवाक् और एक हजार सत्रह सूक्त हैं।

वालखिल्य सूक्तों[१] की संख्या इसमें सम्मिलित नहीं है। ये अष्टम मण्डल में (४८ वें सूक्त से ५९ वें सूक्त तक) सङ्कलित हैं। 'अनुवाकानुक्रमणी' के अनुसार ऋक् संहिता में कुल १०५८१ ऋचायें संग्रहीत हैं —

ऋचां दश सहस्त्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीर्तिततम्॥

इन ऋचाओं में एक लाख तिरपन हजार आठ सौ छब्बीस शब्द आए हैं —

'शाकल्यदृष्टेः पदलक्षमेकं सार्धं च वेदे त्रिसहस्त्रयुक्तम्।
शतानि चाष्टौ दशकद्वयं च पदानि षट् चेति हि चर्चितानि॥'

१— वालखिल्य सूक्तों के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए पढ़िए — 'वैदिक खिल सूक्त- एक अध्ययन (ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर)।

गोत्र-मण्डल (Family-Books) — ऋग्वेद के द्वितीय से लेकर सप्तम मण्डल तक गोत्र-मण्डल या वंशमण्डल कहे जाते हैं क्योंकि इनका साक्षात्कार किसी विशिष्ट ऋषि अथवा उसके वंश ने ही किया है। द्वितीय मण्डल के द्रष्टा गृत्समद, तृतीय के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पञ्चम के अत्रि, षष्ठ के भारद्वाज और सप्तम के वसिष्ठ अथवा उनके सगोत्रीय जन हैं। इन्हें अन्य मण्डलों की अपेक्षा प्राचीन माना जाता है। यद्यपि अनेक भारतीय विद्वान् ऐसे भी हैं जो ऋग्वेद के विभिन्न मण्डलों के मध्य भाषा या अन्य दृष्टियों से अन्तर नहीं मानते।

अन्य मण्डल — प्रथम और दशम मण्डल आपेक्षिक दृष्टि से अर्वाचीन माने जाते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि दोनों मण्डलों में सूक्त-संख्या १९१ ही है। प्रथम मण्डल के ऋषियों को कात्यायन ने 'शतर्चिनः (सौ ऋचा वाले) कहा है। इस मण्डल के प्रथम ऋषि विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दस् हैं। दशम मण्डल में विषय की दृष्टि से कुछ नवीनता है। अष्टम मण्डल के ऋषि कण्व तथा अङ्गिरा वंश के हैं। नवम मण्डल में सोम विषयक समस्त मन्त्रों का संग्रह कर दिया गया है — इसीलिए इसे 'पवमान (सोम) मण्डल' भी कहा जाता है। इस मण्डल में विभिन्न ऋषियों के सूक्त संगृहीत हैं।

ऋग्वेद की शाखायें — अध्ययन-विस्तार के अनुसार कालान्तर में एक ही मन्त्र-संहिता की अनेक शाखायें हो गई। एक वेद की सभी शाखाओं में मूल संहिता अभिन्न ही थी; इनमें कुछ मन्त्रों का न्यूनाधिक्य, पाठ-व्यतिक्रम, उच्चारण भेद और अनुष्ठाना विधि का पार्थक्य ही प्रायः रहता था। उनके स्वरूप में मूलतः कोई अधिक अन्तर न था, जैसा कि पं० सत्यव्रत सामश्रमी का कथन है — 'वेदशाखाभेदो न मन्वाद्यध्यायभेद तुल्यः प्रत्युत भिन्नकाललिखितानां भिन्नदेशीयानां एकग्रन्थानामपि वहुतरादर्शपुस्तकानां यथा भवत्येव पाठादिभेदः प्रायस्तथैव।' (त्रयी परिचय, पृष्ठ ४२)

व्याकरण — महाभाष्य के अनुसार ऋग्वेद की २१ शाखायें रही हैं — एक विंशतिधा वाहवृच्यम्' (पस्पश)। इनमें से 'चरणब्यूह' में उल्लिखित शाखायें प्रमुख हैं — शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शाङ्खायन और माण्डूकायन। सम्प्रति केवल शाकल शाखा ही प्राप्त होती है। अन्य शाखायें शाकल शाखा से किस रूप में भिन्न थीं; उनमें परस्पर क्या अन्तर था ? - इसे आज साधिकार इंगित कर पाना सम्भव नहीं है। यों 'चरणव्यूह' इत्यादि ग्रन्थों में इस दृष्टि से कुछ प्रयत्न किया गया है।

ऋक् संहिता में वर्णित विषय — ऋग्वेद में वेदिक कालीन समाज के धर्म, दर्शन, अध्यात्म, राजनीति, अर्थ-व्यवस्था, कला-कौशल का भव्य चित्र अङ्कित है। वेद कालीन ऋषियों के जीवन में देवताओं को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, इसलिए देवस्तुतियों का बाहुल्य स्वामाविक है। परवर्ती अनुक्रमणीकारों एवं वेद विचारकों ने किसी न किसी देवता से प्रत्येक ऋग्वैदिक मंत्र को सम्बद्ध कर दिया है। यथार्थ में देखा जाए तो वर्ण्य विषय का नाम ही देवता है। देवता अर्थात् वर्ण्य विषय। अन्यथा छुरा, उलूखल आदि देवता न होते। ऋग्वेद में

प्राप्य समाज यद्यपि विकासमान प्रतीत होता है तथापि अनेक सामाजिक संस्थायें विकसित हो चुकी थीं और उनके नाम तथा अन्य विवरणात्मक संकेत भी मिलते हैं। युद्ध, शस्त्रास्त्र, मनोरंजन सभी कुछ न्यूनाधिक रूप में उल्लिखित हैं। संक्षेप में कहा जाये तो ऋग्वेद संहिता में एक समाज का सम्पूर्ण चित्र निहित है। आर्य-व्यक्तित्व की महानता और दुर्बलता की ओर भी इंगित किया गया है। द्यूत-क्रीड़ा में सर्वथा पराजित एक मनुष्य का पश्चाताप जहाँ हमारी बुद्धि को विचार की सामग्री देता है; हिरण्यगर्भ पुरुष और नासदीय सदृश दार्शनिक तथा सृष्टि विषयक सूक्त आत्म-विश्लेषण पर बाध्य करते हैं वही पुरूरवा की त्रासदी, प्रणय-प्रसंग में उर्वशी की निष्ठुरता, मन की अशेष संवेदनाओं को झकझोर देती है। दस्युओं की समाज-विरोधी गतिविधियाँ जहाँ आतङ्कित करती हैं, वहीं इन्द्र के प्रबल पराक्रम सम्भूय-समुत्थान की सिद्धान्त स्थापना भी करते हैं। पणियों की स्वार्थ-साधना, आर्थिक संसाधनों पर एकाधिपत्य और संग्रह की दुष्प्रवृत्ति जहाँ हमारी घृणा को जगाती है वहीं दानस्तुतियों में दिखाई देने वाला औदार्य सामाजिक साम्य का पथ भी प्रशस्त करता है।

वेद की रक्षा के उपाय

वेद-मन्त्रों के शुद्ध स्वरूप को बनाये रखने के लिए तथा उनके उच्चारण में तनिक भी अन्तर न आने देने के लिये वैदिकों ने अनेक प्रकार की व्यवस्था की थी। ये उपाय पाठमूलक थे। इन्हें 'विकृतियाँ' कहा जाता है। इनके कारण मन्त्रों में कहीं भी पाठान्तर या प्रच्युति नहीं हुई। आठ विकृतियाँ ये हैं —

जटा माला रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः, क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

जटा, माला शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन पाठ। इनके अतिरिक्त तीन पाठ और हैं —१. संहिता पाठ, २. पद पाठ तथा ३. क्रमपाठ। संहिता पाठ में मन्त्र अपने मूल रूप में रहता है। पदपाठ में पदों को अलग-अलग असंहित रूप में पढ़ा जाता है। संहिता पाठ से पदपाठ में मन्त्र को अन्तरित करने पर स्वरों में विपुल परिवर्तन हो जाता है। पद पाठ के विशेष नियमों का आगे उल्लेख है। क्रमपाठ में क्रम से दो पदों का पाठ होता है। इनमें से कुछ पाठों और विकृतियों का यहाँ निदर्शन प्रस्तुत हैं —

१. संहिता पाठ — ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा।

२. पद पाठ — ओषधयः सम्, वदन्ते, सोमेन, सह, राज्ञा।

३. क्रम पाठ — ओषधयः सम्, संवदन्ते, वदन्ते, सोमेन, सोमेन सह, सह राज्ञा, राज्ञेति राजा।

४. जटा पाठ — ओषधयः सम्, सम् ओषधयः, सम् संवदन्ते, वदन्ते सम्, संवदन्ते।

५. शिखा पाठ — ओषधयः सं, समोषधयः ओषधयः सं — वदन्ते। सं वदन्ते, वदन्ते सम्, सं वदन्ते — सोमेन।

६. घन पाठ — ओषधयः सं, समोषधय ओषधयः संवदन्ते, वदन्ते समोषधय ओषधयः, संवन्दते, सं वदन्ते, वदन्ते सं संवदन्ते, सोमेन, सोमेन वदन्ते, संवदन्ते सोमेन।

घनपाठ में प्रथम पद पाँच वार, द्वितीय पद दस बार तथा तृतीय और चतुर्थ पद तेरह-तेरह वार आते हैं।

वेद का काल-निर्णय

सुप्रामाणिक साक्ष्यों के अभाव में वेदों के रचनाकाल का निर्णय करना बहुत जटिल कार्य है, इसीलिए मनीषियों के मध्य इस विषय में प्रचुर मतभेद है। कालनिर्णय का प्रयास करने वाले विद्वानों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे वैदिक और वेद-भक्त आते हैं जिनके लिए वेद अनादि, अपौरुषेय और नित्य हैं। वे इस विषय में विचार करना ही व्यर्थ समझते रहे हैं। उनके मन का कुतूहल केवल यह जानकर ही समाप्त हो जाता है कि जिस दिन सृष्टि आरम्भ हुई तभी ऋषियों के हृदय में वेदों का भी आविर्भाव हो गया। दूसरी श्रेणी उन पाश्चात्य विद्वानों की है जिन्होंने वेद के काल-निर्णय की दृष्टि से कुछ पूर्वाग्रह पाल रखे हैं। वस्तुतः ईसाई मत के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि पिछले आठ हजार वर्षों में हुई, इसीलिए वे खींच-तान कर वेदों का रचनाकाल आज से चार-पाँच हजार वर्ष पूर्व ही निश्चित कर देना चाहते हैं। तीसरे वर्ग में वे अनुसंधान प्रेमी हैं जो शोध के समय आस्तिक्ता की सीमाओं को वाधक नहीं बनाते; वे अनादिता को इसलिए नहीं मानते क्योंकि इससे अध्ययन-परम्परा प्रशस्त्र नहीं होती। इन विद्वानों ने ज्योतिष, भूगर्भशास्त्र की अधुनातन खोजों के आधार पर वेद के रचना-काल की समस्या को सुलझाने का प्रशंस्य प्रयत्न किया है।

वेदों के रचना-काल की पूर्व सीमा का हमें कोई ज्ञान नहीं है। हाँ, अन्तिम सीमा की दृष्टि से बुद्ध का काल माना जा सकता है। बुद्ध ने यज्ञों का प्रवल विरोध किया था। इससे विद्वान् यह निष्कर्ष निकालते हैं कि तव तक संभवतः यज्ञ-प्रक्रिया का सम्पूर्ण विकास हो चुका होगा। यज्ञों के विधि-विधान का विपुल विकास कल्पसूत्रों में हुआ है जिनकी रचना सूत्र-काल में हुई। इसके अतिरिक्त सन् १९०७ ई० में एशिया माइनर के वोघाजकोई नामक स्थान से प्रो० ह्यूगो विंकलर को एक शिलालेख प्राप्त हुआ जिसमें १४०० ई० पूर्व के प्रारम्भ में मितानी और हित्ती लोगों के मध्य हुई किसी सन्धि का उल्लेख है। इसमें साक्षी रूप में अन्य देवताओं के साथ मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्या (अश्विन) देवों का भी उल्लेख है। इससे अनुमान किया जाता है कि तव तक अर्थात् १४०० ई० पूर्व तक मूल वैदिक संहिताओं की रचना हो चुकी थी।

वेद के रचना-काल के विषय में प्रचलित प्रमुख मतों का परिचय इस प्रकार है —

१. मैक्समूलर का मत — वुद्ध के आविर्माव को आधार मानकर प्रो० मैक्समूलर ने

वेद-रचना का काल १२०० वर्ष ई० पूर्व माना। उन्होंने सम्पूर्ण वैदिक काल को चार भागों में विभक्त किया —

(क) १२०० ई० पूर्व से १००० ई० पू० — छन्दोकाल तथा प्रकीर्ण मन्त्रों का रचना-काल। इसी काल में ऋग्वेद की रचना हुई।

(ख) १००० ई० पू० से ८०० ई० पू० — मन्त्र-काल। इस काल में मन्त्रों का संहिताओं के रूप में संकलन किया गया है।

(ग) ८०० ई० पू० से ६०० ई० पू० — ब्राह्मण-काल। ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना इसी अन्तराल में हुई।

(घ) ६०० ई० पू० से ४०० ई० पू० — सूत्र-काल। श्रौतसूत्रों और गृह्यसूत्रों की रचना इन्हीं २०० वर्षों में हुई।

यह मत कुछ समय तक बहुत प्रचलित रहा, किन्तु बाद में स्वयं इसके प्रस्तावक प्रो० मैक्समूलर ने ही इसे अमान्य कर दिया। बोघाजकोई से उपर्युक्त शिलालेख के प्राप्त होने पर तो यह विल्कुल ही निरस्त हो गया।

(२) लोकमान्य तिलक का मत — तिलक जी ने ज्योतिष के आधार पर वेद की रचना का सर्वप्राचीन काल ई. पू. ६००० से ४००० ई० पू० माना है। उन्होंने यहं तिथि विभिन्न नक्षत्रों के वसन्त-सम्पात के आधार पर निश्चित की है। तथा वेदकाल को चार भागों में विभक्त किया है।

(क) अदिति काल — ६००० ई० पू० से ४००० ई० पू०। इस काल में निविध मन्त्रों की रचना हुई।

(ख) मृगशिरा — ४००० से २५०० ई० पू०। ऋग्वेद के अधिसंख्य सूक्तों की रचना इसी युग में हुई।

(ग) कृत्तिका काल — २५०० ई० पू० से १४०० ई०; चारों वेद-संहिताओं का संकलन और तैत्तिरीय संहिता तथा कुछ ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना इसी युग में हुई। मन्त्रों की रचना भले ही ६००० ई० पू० में प्रारम्भ हो गई थी, किन्तु यज्ञों की दृष्टि से उनका परिष्कार और संग्रह इसी काल में हुआ।[१] वेदाङ्ग ज्योतिष की रचना भी इसी युग में हुई क्योंकि इसमें

१— It was at this time that the Samhitas were probably compiled into systematic books and attempts made to ascertain the meaning of the oldest hymns and formula.

—*The Orion, page 207.*

सूर्य और चन्द्रमा के श्रविष्टा के आदि में उत्तर ओर घूम जाने का वर्णन है,[१] जो गणना के अनुसार १४०० ई0 पू0 की घटना है।

(घ) अन्तिम काल — १४०० ई0 पू0 से ५०० ई0 पू0; श्रौतसूत्रों, गृह्यसूत्रों, तथा विभिन्न दर्शन-सूत्रों की रचना का यही काल है।

अन्त में तिलक जी ने एक सुझाव दिया है कि यदि वेद का रचना-काल ४००० ई0 पू0 मान लिया जाये तो भारतीय और पाश्चात्य मतों का समन्वय हो जायेगा।[२]

तिलक की गणना-प्रक्रिया — ऋतुओं का आगमन सूर्य-संक्रमण पर आधृत है। ऋतुयें निरन्तर पीछे हट रही हैं। पहले वर्ष का आरम्भ वसन्त से होता था। उस समय वसन्त-सम्पात (Vernal Equninox) क्रमशः भाद्रपद; रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा आदि नक्षत्रों में होता था; आज वह मीन की संकान्ति से आरम्भ होता है — यह संकान्ति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण से आरम्भ होती है। धीरे-धीरे नक्षत्र एक के वाद एक के क्रम से पीछे हटे हैं। नक्षत्र २७ हैं। और सूर्य का संक्रमण वृत्त या राशिचक्र (Zodiace) ३६० डिग्री का है। अतः प्रत्येक नक्षत्र की दूरी (३६०÷२७) १३ ⅓ डिग्री है। प्रत्येक नक्षत्र समयानुसार अपने स्थान से हटता रहता है। एक नक्षत्र को एक डिग्री पीछे हटने में ७२ वर्ष लगते हैं। इस प्रकार एक नक्षत्र को १३ ⅓ डिग्री पीछे हटने में अर्थात् नक्षत्र के स्थान पर पहुँचने में ९७२ वर्ष (७२×१३ ⅓) लगते हैं। अतः लगभग २५०० वर्ष पूर्व कृत्तिका में वसन्त-सम्पात हुआ होगा।

तिलक को ऋग्वेद में कुछ ऐसे मन्त्र[३] मिले, जिनसे मृगशिरा नक्षत्र में वसन्त सम्पात होने

१— प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुद्क।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघ-श्रवणयोः सदा।।

२— We can thus satisfactorily account for all the opinions and traditions current about the age of the Vedas amongst ancient and modern scholars in India and in Europe, if we place the Vedic period at about 4000 B. C. in strict accordance with the astronomical reference and facts recorded in the ancient literature of India. — *The Orion, page 220*

३— (क) विश्रृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः — ऋ0 सं0 १-३३-१२
(ख) यद्धः सत्यं मायिनं मृगम्...... — वही १-८०-७।
(ग) शिरो नवस्य राविषम0...... वही १०-८६-५

के संकेत प्राप्त होते हैं। यह वसन्त-सम्पात और आगे पुनर्वसु तक जाता है।[1] मृगशिरा से कृत्तिका दो नक्षत्र पहले है और पुनर्वसु से चार नक्षत्र पहले। अतः मृगशिरा में वसन्त-सम्पात का समय कृत्तिका वाले समय से १९४४ (९७२×२) वर्ष पूर्व होगा। फलतः मृगशिरा में वसन्त-सम्पात होने का समय ४४४४ वर्ष ई० पू० है। निष्कर्ष यह कि वेदों की रचना लगभग ४५०० वर्ष पूर्व अर्थात् आज से ६५०० वर्ष पूर्व हुई होगी। यदि पुनर्वसु में वसन्त-सम्पात मानें तो लगभग २०० वर्ष और बढ़ जायेंगे।

(३) शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित का मत — दीक्षित जी ने शतपथ ब्राह्मण का एक अंश उद्धृत किया है, जिससे ज्ञात होता है कि उक्त ब्राह्मण के रचना-काल में कृत्तिकाओं का उदय ठीक पूर्वीय बिन्दु पर होता था।[2] इससे सूचना मिलती है कि कृत्तिका नक्षत्र अपने स्थान से ४¼ नक्षत्र (भरणी, अश्विनी, रेवती और उत्तरा भाद्रपद होते हुए) पीछे हट चुका है। अतः कृत्तिका नक्षत्र में वसन्त-सम्पात सम्भवतः २५०० ई० पू० हुआ होगा, वही शतपथ ब्राह्मण का रचना-काल है। चारों वेदों की रचना में एक सहस्र वर्ष और लगे होंगे। इस प्रकार ३५०० ई० पू० में वेदों की रचना आरम्भ हुई होगी।

(४) याकोबी का मत — शर्मण्यदेशीय वेदज्ञ याकोबी का आधार भी ज्योतिष ही है। उन्होंने गृह्यसूत्रों में, वैवाहिक संस्कार के प्रसंग में आये 'ध्रुव दर्शन' कृत्य पर विचार कर अपना मत प्रकट किया कि लगभग ४५०० वर्ष ई० पू० में ऋग्वेद की रचना हुई होगी। यह विस्मयोत्पादक साम्य है कि दो दूरस्थ विद्वान् एक ही शास्त्र के विभिन्न आधारों पर एक ही साथ, एक ही निश्चय पर पहुँचे। तिलक ने अपने ग्रन्थों में इस साम्य का उल्लेख किया है।

(५) अविनाश चन्द्रदास का मत — डॉ० दास ने भूगर्भशास्त्र और भूगोलगत साक्ष्यों के आधार पर ऋग्वेद का रचना-काल ईसा से २५ सहस्र वर्ष पूर्व निश्चित किया है। कुछ प्रमुख तथ्य ये हैं — (क) ऋग्वेद में सरस्वती नदी के समुद्र में मिलने का उल्लेख है — 'एका चेतत् सरस्वती नदीनाम्, शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्' (ऋ० सं० ७-९५-२)। (ख) यह

१— दस्रो यमोऽनलो ब्रह्मा चन्द्रो रुद्रोऽदितिर्गुरुः।
.... कमान्नक्षत्रदेवताः।।

(लघुसंग्रह, श्लोक ६१—६३)

२— एकं द्वे त्रीणि चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राणि, अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिकास्तद् भूमानमेव एतदुपैति, तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते

—शतपथ ब्राह्मण २—१२१

समुद्र राजस्थान में था किसी बड़े भूकम्प के कारण समुद्र और सरस्वती दोनों विलीन हो गये। (ग) आर्यों के निवास-स्थान सप्तसैन्धव प्रदेश के चारों ओर चार समुद्र थे। पूर्वी समुद्र वहाँ था, जहाँ आज उत्तर प्रदेश और बिहार है; पश्चिमी समुद्र आज भी वहीं है, उत्तरी समुद्र उत्तर में था — आज का 'कैस्पियन' समुद्र उसी का अवशेष है; दक्षिणी समुद्र राजस्थान में थे। (घ) गंगा-प्रदेश, हिमालय की तलहटी तथा असम के पर्वतीय प्रदेश राजस्थान में थे। (घ) गंगा-प्रदेश, हिमालय की तलहटी तथा असम के पर्वतीय प्रदेश समुद्र के अन्दर थे। (ङ) भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार यह स्थिति ईसा से ५० हजार वर्ष से लेकर २५ हजार वर्ष पहले थी।

(६) महर्षि दयानन्द सरस्वती का मत — आर्य-समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द के अनुसार वेदों का उद्‌गम परमात्मा से हुआ। अतः जिस दिन सृष्टि आरम्भ हुई, उसी दिन वेदों का भी आविर्भाव हुआ। भारतीय ज्योतिष के अनुसार वर्तमान सृष्टि १९५५८८५०९६ वर्ष पहले थी, अतः यही वेदोत्पत्ति-काल भी है।

(७) विण्टरनित्स का मत — वैदिक काल २५०० ई0 पू0 से ५०० ई0 पू0 तक माना जा सकता है।

(८) पं0 दीनानाथ शास्त्री जुलेट ने भी ज्योतिष के आधार पर वेद का रचना-काल आज से तीन लाख वर्ष प्राचीन माना है।

(९) मैक्डॉनेल ने ऋग्वेद की रचना ईसा से १३०० वर्ष पहले बतलाई है। उसी समय भारतीय आर्य और ईरानी आर्य अलग-अलग हुए।

(१०) डॉ0 भाण्डाकर का मत — ईशावास्य उपनिषद् में आए 'असुर्या' शब्द को डॉ0 भाण्डारकर ने वर्तमान 'असीरिया' का समानार्थक प्रमाणित किया है। असीरिया (मेसोपोटामिया) के निवासी ही वेदों में उल्लिखित असुर हैं। लगभग २५०० वर्ष ई0 पू0 में ये भारत में प्रविष्ट हुए। इसी आधार पर ऋग्वेद का रचना काल ६००० ई0 पू0 माना जा सकता है।

(११) अमलनरेकर का मत — इतिहासज्ञ एच0 जी0 वेल्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आउटलाइन्स ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री' में २५००-५००० वर्ष पूर्व के विश्व की रूपरेखा प्रस्तुत की है। इसी आधार पर अमलनरेकर ने ६६०००-७५००० वर्ष पहले ऋग्वेद का रचना-काल बतलाया है।

उपर्युक्त मतों की बड़ी संख्या से यह स्पष्ट है कि प्रयासों की इस संकुलता के विपरीत वेदों की रचना का काल अभी तक अनिर्णीत ही है। सम्प्रति यह प्रश्न केवल वैदिकों तक ही सीमित नहीं है; पुरातत्त्व, मानवशास्त्र एवं भूगर्भविज्ञान की नई शोधों के आयाम भी इससे जुड़े हैं। यद्यपि यह सही है कि वेदानुशीलियों के समक्ष प्रामाणिक साक्ष्यों का अभाव दुर्भेद्य चट्टान

वनकर खड़ा है, किन्तु यह भी निश्चित है कि शीघ्र ही किसी दिन मानविकी के अध्येता इस समस्या को सुलझाकर ही रहेंगे।

वेदाध्ययन की प्राच्य परम्परा

पदपाठकार — वेदार्थ को समझने की दृष्टि से प्रथम प्रयास में शाकल्य ने ऋग्वेद का पदपाठ[१] प्रस्तुत किया। ऋग्वेद के शाखाप्रवर्तक आचार्यों में भी शाकल्य का नाम आद्य है — 'शाकल्यः प्रथमस्तेषाम्...।[२] निरुक्तकार यास्क ने इन्हें उद्धृत किया है। कहीं-कहीं यास्क ने इनसे अपनी असमहति भी व्यक्त की है। ऋग्वेद पर रावण-रचित पदपाठ भी प्राप्त होता है। यजुर्वेद पर भी पदपाठ प्राप्य है। माध्यन्दिन संहिता का पद पाठ प्रकाशित है। तैत्तिरीय संहिता पर आत्रेय का पद्पाठ प्राप्त होता है। सामवेद पर पदपाठ का प्रणयन गार्ग्य ने किया। अथर्ववेद के पदपाठकार का नाम अज्ञात है।

प्रमुख वैदिक भाष्यकार

स्कन्दस्वामी — यह ऋग्वेद के आद्य भाष्यकार हैं। शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी ने इन्हें अपना गुरु वतलाया है —

यः सम्राट् कृतवान्सप्त सोमसंस्थास्तथर्क द्युतिम्।
व्याख्यां कृत्वाऽध्यापयन्मां श्रीस्कन्द स्वाम्यस्ति मे गुरुः।

डॉ0 लक्ष्मणसरूप ने इसी आधार पर इनका समय ईसा की छठी शताब्दी के आदि में निश्चित किया है। स्कन्दस्वामी ने ऋग्वेद और निरुक्त दोनों पर अपने भाष्यों की रचना की थी। सायण की तुलना में स्कन्द का ऋग्भाष्य संक्षिप्त है। यह केवल चतुर्थाष्टक तक ही प्राप्त है।

उद्गीथ — इनका भाष्य ऋग्वेद के अन्तिम कुछ मण्डलों पर प्राप्य है। इन्होंने स्वयं अपने को 'वनवासी' (कर्णाटक के पश्चिमी भाग) से सम्बद्ध बतलाया है। भाष्य की शैली स्कन्दस्वामी से प्रभावित प्रतीत होती है।[३]

माधव — यह वेङ्कट माधव से भिन्न हैं। इनके ऋग्भाष्य का प्रकाशन डॉ0 कूहनन् राज ने सम्पादित कर कराया है। माधव के ऋग्भाष्य के आरम्भ में ११ अहक्रमणियाँ थीं, जिनमें से कुछ आज अप्राप्य हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है स्वरानुक्रमणी। माधव के भाष्य का अनुकरण प्रायः सभी परवर्ती भाष्यकारों ने किया।

१— ऋग्वेद के पदपाठ के विशेष विवरण के लिए देखिए- 'Padapatha of the Rgvedh' (डॉ0 मोतीलाल रस्तोगी का शोध प्रबन्ध, टैगोर लाइब्रेरी, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

२— ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्वभाग, द्वितीय पाद अ0 34।

३— स्कन्द स्वामी और उद्गीथ के ऋग्भाष्य विश्वेश्वरानन्द संस्थान से प्रकाशित हो चुके हैं।

वेङ्कटमाधव — इन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेद पर भाष्य रचा था, भाष्य के प्रथम अध्याय के अन्त में दिए गए परिचय के अनुसार इनके पितामह का नाम माधव, पिता का वेङ्कटाचार्य और माँ का नाम भवसुन्दरी था। ये कौशिक गोत्रीय थे। वेङ्कटमाधव आन्ध्रप्रदेश के निवासी थे। श्री साम्बशिव शास्त्री के अनुसार इनका स्थितिकाल १०५० से ११५० ई० के अन्दर है। इनका भाष्य अति संक्षिप्त है। ब्राह्मण ग्रन्थों के विपुल उद्धरण इसका मूल्य बढ़ा देते हैं।

सायणाचार्य — सम्प्रति सायणाचार्य के वेद-भाष्य ही वेदार्थ समझने में हमारे सहयोगी हैं। सायण ने ५ संहिताओं, ११ ब्राह्मणों और दो आरण्यकों पर भाष्य रचे। उनकी सूची इस प्रकार है — **संहिताएँ** — तैत्तिरीय संहिता, ऋग्वेद, सामवेद संहिता, काण्वसंहिता और अथर्ववेदसंहिता, **ब्राह्मण** — तैत्तिरीय, ऐतरेय ब्राह्मण, ताण्ड्य (पञ्चविंश) महाब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, सामविधान, ब्राह्मण, आर्षेय ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण, उपनिषद् ब्राह्मण, संहितपनिषद् ब्राह्मण, वंशब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण; **आरण्यक** — तैत्तरीय अरण्यक तथा ऐतरेय आरण्यक। सर्वप्रथम सायण ने तैत्तिरीय संहिता पर भाव्य रचा, क्योंकि यह उनकी अपनी शाखा थी। इसके अतिरिक्त यज्ञ की दृष्टि से भी इसका अधिक उपयोग था। सायण के वेद भाष्य अपने में सम्पूर्ण तथा सर्वथा विश्वसनीय हैं। श्रुतियों ब्राह्मणों तथा वेदाङ्गों के प्रचुर उद्धरणों ने इन्हें और भी प्रामाणिकता तथा गौरव प्रदान किया है। इन भाष्यों के प्रारम्भ की लम्बी-लम्बी भूमिकाओं में सायण ने वेदानुशीलन से सम्बद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर शास्त्रीय ढंग से विचार किया है। प्राची और प्रतीची के सभी सायणोत्तर वेदानुशीली इनसे अशेष उपकृत हुए हैं। निष्कर्ष भले ही भिन्न हों, किन्तु आधार सभी का सायण-भाष्य ही है। अथर्ववेद पर सायण का पूरा भाष्य नहीं मिलता। सायण का दृष्टिकोण यज्ञपरक है। भाष्यों में स्वर और व्याकरण-प्रक्रिया पर भी उन्होंने विचार किया है। 'यद्वा' कहकर दूसरे पक्ष भी प्रस्तुत किये हैं।

सायण के अग्रज माधवाचार्य, जो बाद में विद्यारण्य स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए, विजयानगरम् के हिन्दू सम्राट् बुक्क के अमात्य और गुरु थे। बुक्क ने माधव को ही वेदों पर भाष्य लिखने के लिए प्रेरित किया, किन्तु माधव ने अपने अनुज सायणाचार्य से यह कार्य कराने के लिए कहा —

स प्राह नृपतिं राजन्! सायणार्यो ममानुजः।
सर्वं वेत्त्येष वेदानां व्याख्यातृत्वे नियुज्यताम्॥

माधवाचार्य ने बुक्क से कहा — 'महाराज, मेरा अनुज सायण वेद के विषय में सब कुछ जानता है अतः उसे ही वेदों के व्याख्यान में नियुक्त कीजिए।

सायण ने अग्रज के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए अपने वेद भाष्यों को माधवीय नाम दिया है। यों सामूहिक रूप में इन भाष्यों का नाम 'वेदार्थ-प्रकाश' है।

सायण बुक्कनरेश के मन्त्री तथा बुक्क के पुत्र हरिहर (द्वितीय) के प्रधानमन्त्री थे। उनके पिता का नाम मायण, माँ का नाम श्रीमती और गुरु का नाम श्रीकण्ठ था। समय १४ वीं

ताब्दी है। सायण जिस प्रकार से महावेदज्ञ और भाष्यकार थे, वैसे ही धुरन्धर राजनीतिज्ञ था योद्धा भी। कहा जाता है युद्ध में उनकी असि का वर्णन सुनकर शत्रुओं के छक्के छूट ाते थे। सायण का पारिवारिक जीवन भी बहुत सुखद था। उनके सभी पुत्र साहित्य-हृदय, कलानिष्णात और कलामर्मज्ञ थे। सायण का जीवन वस्तुतः बहुमुखी प्रतिभा का तीक है।

सभी देशी-विदेशी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से सायण के वेद-भाष्यों की प्रशंसा की है। र्मनी में वेदज्ञों के एक वर्ग ने हठवश कुछ समय तक सायण का विरोध किया, किन्तु ालान्तर से वहीं के विद्वानों ने यह स्वीकार किया कि सायण-भाष्य से सहायता लिए बना वेदाध्ययनकी दिशा में हम एक पग भी आगे नहीं रख सकते।

महर्षि दयानन्द सरस्वती — यह आर्य-समाज के प्रवर्तक और पुनर्जागरण के ग्रदूत हैं। उन्होंने वर्तमान युग के आरम्भ में, देश में पुनः वेदज्ञान के प्रति निष्ठा उत्पन्न ी। प्राचीन भाष्यकारों से वे असन्तुष्ट थे, इसलिए शुक्ल यजुर्वेद और ऋग्वेद पर अपने याख्यान रचे, किन्तु भाष्य-रचना अभी सातवें मण्डल तक ही हो पाई थी कि स्वामी जी ा असामयिक निधन हो गया और इससे भाष्य अपूर्ण रह गया। अपने वेदविषयक वचारों और मान्यताओं का प्रतिपादन उन्होंने 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' और 'सत्यार्थ काश' में विस्तारपूर्वक किया है। वैदिक भाष्यकार के रूप में स्वामीजी की दृष्टि सर्वथा ाध्यात्मिक रही है। उन्होंने 'वेदों को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक' कहा है। अष्टाध्यायी ौर निरुक्त-केवल इन्हीं दोनों का आधार उन्होंने वेद-व्याख्यान में लिया है। दार्शनिक ृष्टि से वे 'त्रित्त्ववाद' में विश्वास करते थे। उन्होंने विभिन्न देवताओं की स्वतन्त्र सत्ता न ानकर उनके नामों को परमेश्वर के ही विभिन्न गुणों का वाचक माना है। स्वामीजी ने ेदों में इतिहास का अस्तित्व भी नहीं स्वीकार किया है।

सातवलेकर — स्व० पं० श्रीपाददामोदर सातवलेकर को आधुनिक युग का अभिनव सायण' कहा जा सकता है। अनेक वैदिक संहिताओं का सम्पादन करने के साथ ी उन्होंने उन पर सुबोध भाष्यों की भी रचना की। ऋग्वेद और अथर्ववेद के उनके सुबोध द-भाष्य नितान्त प्रख्यात हैं। वेदविषयक उनके ग्रन्थों की संख्या ३०० से ऊपर कही ाती है। अथर्ववेद के 'पृथिवी सूक्त' पर भाष्य रचने के कारण उन्हें कारागृह की यात्रा भी रनी पड़ी थी। वेदों की व्याख्या में उन्होंने राष्ट्रवादी दृष्टिकोण को प्रधानता दी है। उनका धिकांश वेदविषयक कार्य हिन्दी और मराठी में है। देवताओं को वे संभवतः मनुष्य के रीर में स्थित विभिन्न शक्तियाँ मानते थे। वेदों में राष्ट्र की दासता से मुक्ति, राष्ट्र का नव-र्माण, राम-राज्य की अवतारणा, मानव-जीवन को यज्ञमय बनाना, प्रजातंत्र आदि के

— वेद — भाष्यकारों के विषय में अनुशीलनीय — पं भगवद्दत्त कृत 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' (भाष्यकारों वाला भाग)

विषय में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उन्होंने अनुसंधान किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन ही वेदमय था। १०२ वर्षों की सुदीर्घ आयु को उन्होंने वेदानुशीलन में ही व्यय किया।

म0 म0 पं0 मधूसूदन ओझा — ओझा जी ने विधिवत् यद्यपि किसी संहिता पर विस्तृत व्याख्या नहीं लिखी, किन्तु वेद-मंत्रों के वैज्ञानिक तत्त्वों का उद्‌घाटन करने के लिए उन्होंने जिन पुस्तकों की रचना की उनमें प्रसंगवश उद्धृत मंत्रों की व्याख्या भी की। उन्होंने वेदों की व्याख्या में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रशस्त किया। ओझा जी के कार्य को म0 म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, मोतीलाल शास्त्री और अन्य सुयोग्य शिष्यों ने आगे बढ़ाया है।

योगिवर अरविन्द[1]— सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी और अध्यात्म-पुरुष होने के साथ ही श्री अरविन्द ने वेद-मंत्रों के अपरिज्ञात अर्थों पर भी प्रकाश डाला है। उनके अनुसार वेदार्थ का सम्यक् ज्ञान साधक के शुद्ध अन्तःकरण में होता है। अरविन्द की दृष्टि रहस्यवादी है। उनका कथन है — 'मैंने यह देखा कि वेद के मंत्र, एक स्पष्ट और ठीक प्रकाश के साथ मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकाशित करते हैं।' उदाहरण के लिए श्री अरविन्द के अनुसार वैदिक इन्द्र प्रवुद्ध मन के देवता हैं, वृत्र अज्ञान अथवा अविद्या का प्रतीक है; इन्द्र उसके हन्ता हैं। इन्द्र से सम्बद्ध गायें आत्मिक प्रकाश की बोधक हैं। यह आत्मिक प्रकाश ज्ञान का परिचायक है। इन्द्र के विरोधी दस्यु तमस् की शक्तियाँ हैं। कपालिशास्त्री ने अरविन्द के वैचारिक आधार पर ऋग्वेद के 'सिद्धाञ्जन भाष्य' की रचना की है।

वैदिक देवताओं का स्वरूप

'वृहद्देवता' के अनुसार प्रत्येक वेद-प्रेमी को मंत्रगत देवताओं का ज्ञान सप्रयत्न करना चाहिए क्योंकि जो देवतत्त्व से सुपरिचित है, वही वेद के अर्थ को भी जान सकता है। मंत्रों के देवताओं के सम्यक् ज्ञान के विना लौकिक अथवा वैदिक संस्कारों का फल नहीं प्राप्त किया जा सकता।[2] मंत्रों के देवों को जानते हुए जो व्यक्ति किसी कर्म का अनुष्ठान करता है, उसकी हवि को देवगण ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु उसकी हवि को स्वीकार नहीं करते जो इस विषय में अनभिज्ञ है। निष्कर्ष यह है कि इन सभी देवताओं की योग, दक्षता, दम, बुद्धि, पाण्डित्य, तप तथा नियोग के साथ उपासना करनी चाहिए।[3]

वैदिक वेदों का स्वरूप अत्यन्त जटिल है। प्राचीन भारतीय वेदानुशीलियों के अतिरिक्त

१— इस विषय में विशेष जानकारी के लिए देखिए — श्री अरविन्दकृत 'वेद रहस्य' (२ भाग) तथा हिम्स टू दि मिस्टिक फायर शीर्षक ग्रन्थ।

२— वृहद्देवता १.२; ४ ।

३— मन्त्राणां देवताविद्यः प्रयुङ्क्ते कर्म कर्हिचित्।
जुषन्ते देवतास्तस्य हविर्नादेवताविदः।।
योगेन दाक्ष्येण दमेन बुद्धया बाहुश्रुत्येन तपसा नियोगैः।
उपास्यास्ताः कृत्स्नशो देवता या ।।. वही ८.१३१; १३०।

इस युग में भी प्राच्य और प्रतीच्य गवेषकों ने देवतत्त्व के यथातथ्य उन्मीलन-हेतु विपुल मन्त्र-मंथन किया है, विश्व की विभिन्न पुराकथाओं के साथ वैदिक देवाख्यानों की पर्याप्त तुलनात्मक विवेचना भी की है, किन्तु मतों की भारी भीड़ के अतिरिक्त कोई विशेष उपलब्धि नहीं हो सकी है।

वैदिक देवशास्त्र पर विचार करने वालों को हम प्रमुख रूप से तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं —

(१) पाश्चात्य — कीथ, मैक्डानेल, मैक्समुल्लर, हिलेब्राण्डट्, फर्कुआर रैगोजिन, हॉपकिन्स और ओल्डेन बर्ग आदि।

(२) भारतीय — यास्क, शौनक, माधव, दयानन्द सरस्वती, मधुसूदन ओझा, अरविन्द, सातवलेकर और वासुदेवशरण अग्रवाल आदि।

(३) समवर्ती — तिलक, रा० ना० दाण्डेकर, क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, डी० डी० कौसाम्बी और सम्पूर्णानन्द, गयाचरण त्रिपाठी इत्यादि।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार वैदिक देवों की सामान्य विशेषतये हैं—

(१) वैदिक देवता उन भौतिक घटनाओं के ही अधिक निकट हैं, जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका प्रमुख आधार प्राकृतिक है।

(२) देदीप्यमानता, शक्ति, उपकारशीलता और वैदग्ध्य आदि गुण सभी देवों में समान रूप से हैं। युगल रूप से संस्तुत देवों में गुणों का सम्मिश्रण अधिक है। परिंणामस्वरूप किसी एक देवता की विशिष्टता उस स्थिति में भी दूसरे के साथ संयुक्त मिलती है जबकि वह अकेले ही आता है। ऋग्वेद में इसी कारण एक देव का दूसरे के साथ बहुधा समीकरण है।

(३) ऋग्वैदिक काल की समाप्ति तक एक प्रकार से अनेक देवतावादी एकेश्वरवाद का विकास हो चुका था। इसीलिए इस समय हमें किसी एक देवता की ही औपक्रमिक रूप से सर्वदेववादी धारणा मिलती है और ऐसा देव केवल समग्र देवसमाज का नहीं, प्रत्युत प्रकृति तक का भी प्रतिनिधित्व करता है।

(४) बहुधा वैदिक कविगण स्तूयमान देवता की प्रशस्ति में अत्यंत विभोर हो उठते हैं। मैक्समूलर ने इसे 'हीनोथीज्म' कहा है जिसके अनुसार अलग-अलग देवों को बारी-बारी से सर्वश्रेष्ठ मानने के विश्वास द्वारा वैदिक कविगण उस देवता को, जिसे वह सम्बोधित कर रहे हैं, इस रूप में ग्रहण करके देवत्व के सभी श्रेष्ठतम गुणों को उसी पर आरोपित कर देते हैं मानों उस समय उनके मन में उपस्थित वही देवता सर्वथा स्वतंत्र और सर्वश्रेष्ठ है।

ह्विटनी, हापकिन्स और मैक्डॉनेल ने इसका विरोध किया है। उनके अनुसार कोई भी अन्य धर्म अपने देवों का इतना निकटतम और सम्मिश्रित रूप इतनी अधिक बार नहीं प्रस्तुत करता जितना वैदिक धर्म, और यहाँ तक कि वेदों के सर्वशक्तिमान देवों को भी अन्य देवों पर निर्भर बतलाया गया है।

(५) वैदिक कवियों की दृष्टि में देवों का भी आरम्भ ही हुआ, क्योंकि इन्हें प्रायः आकाश, पृथ्वी अथवा अन्य देवों की सन्तान कहा गया है।

(६) 'पूर्वे' आदि शब्दों से स्पष्ट है कि देवों की अनेक पीढ़ियाँ रही हैं। अथर्ववेद (११.८) में ऐसे १० देवों का उल्लेख है जिनका अन्य देवों की अपेक्षा पहले से अस्तित्व था। मूलतः इन्हें भी मरणशील माना गया है। सोम-पान से ये अमर हुए।

(७) देवों का भौतिक स्वरूप मानवत्वारोपित है किन्तु यह आरोपण अत्यन्त क्षीण है क्योंकि यह केवल देवों के क्रिया-कलापों का वर्णन करने के लिए ही उनके प्राकृतिक आधार का लक्षणात्मक प्रतिनिधित्व करता है।

(८) आशावान् वैदिक भारतीयों को अग्नि, सूर्य, झंझावात आदि प्रमुख प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिनिधि देवगण विशेष रूप से उपकारी और समृद्धि-संवाहक ही दिखे हैं। इसका अपवाद केवल एक देवता है, रुद्र, जिसमें कुछ हानिकर प्रवृत्तियाँ भी हैं।

(९) वैदिक देवों का नैतिक आचरण भी उच्च है।

(१०) इच्छाओं की पूर्ति देवों की कृपा पर ही निर्भर है।

भारतीय दृष्टिकोण[१]— महर्षि यास्क ने वैदिक देवों के स्वरूप को भी आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक-त्रिविध माना है। ये प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के अधिष्ठाता होते हुए भी आध्यात्मिक गरिमा से मण्डित हैं। इनका आकार पुरुषविध और अपुरुषविध दोनों ही प्रकार का है। विस्तृत अध्ययन की दृष्टि से निरुक्त के सप्तम और अष्टम अध्याय अनुशीलनीय हैं।

शौनक ने मंत्रों में देवताविषयक निर्णय पर तो विचार किया है किन्तु देवताओं के स्वरूप पर विशेष विचार नहीं किया।

१— दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए कुछ देवताओं के आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक तीनों अर्थ इस प्रकार हैं —

अग्नि — अग्निः, संकल्पशक्ति; ब्राह्मण, नेता, मंत्री।

इन्द्र — विद्युत्, वृष्टिदेव, जीवात्मा; क्षत्रिय, राजा, राष्ट्रपति अथवा प्रमुख सेनानायक।

मरुद्गण — वृष्टिवात; इन्द्रियाँ अथवा प्राण; सैनिक।

विष्णु — अग्रगामी सूर्य; प्रगति-भावना; समाज-सुधारक।

सविता — प्रकाश; अन्तः प्रेरणा; संन्यासी।

वरुण — आकाश; न्याय-प्रेम-भावना, न्यायविभाग।

सोम — विशिष्ट औषधिः, चन्द्रमा, दिव्यानन्द आदि — लेखक।

स्वामी दयानन्द ने अनेक देवतावाद का विरोध किया है। अग्नि, इन्द्र आदि को उन्होंने एक परमात्मा के विशेष गुण माना है। उदाहरण के लिए परमात्मा के प्रकाशक गुण का नाम अग्नि है। इसी प्रकार से अन्य देव-नामों का भी यौगिक और व्युत्पत्तिपरक अर्थ ही उन्हें ग्राह्य रहा है। कहीं-कहीं 'देव' शब्द का अर्थ उन्होंने 'विद्वान्' भी किया है।

महामहोपाध्याय मधूसूदन ओझा ने देवताओं को विभिन्न वैज्ञानिक शक्तियाँ माना है।

श्री अरविन्द ने भी आध्यात्मिक पक्ष पर ही विशेष वल दिया है। उदाहरण के लिए अग्नि का अभिप्राय अन्तःकरण में स्फुरित होने वाले प्राण हैं। इन्द्र प्रवुद्ध मन के देवता हैं। अश्विनौ के विषय में उनका मत है कि ये दो युगल दिव्य शक्तियाँ हैं, जिनका मुख्य व्यापार है मनुष्य के अन्दर आनन्द भोग रूप में वातमय और प्राणमय सत्ता को पूर्ण करना; परन्तु साथ ही वे सत्य की, ज्ञानयुक्त कर्म की और यथार्थ भोग की भी शक्तियाँ हैं। इन्हें उन्होंने चेतना के समुद्र से उत्पन्न शक्तियाँ बतलाया है।

स्व0 पं0 सातवलेकर ने भी देवताओं को पिण्ड और ब्रह्माण्ड में समानान्तर वर्तमान विभिन्न शक्तियाँ ही बतलाया है। उदाहरण के लिए इन्द्र के विषय में उनका कथन है कि जागतिक तत्वों का जो अंश हमारे शरीर में रहता है, इन्द्र उन्हीं में से एक हैं। इस शक्ति का आगे भी विस्तार किया जा सकता है।

डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने दयानन्द, अरविन्द और सातवलेकर के मतों का आधार लेकर ही अपना स्वतंत्र मत रखा है। उन्होंने केवल दो ही देवता माने हैं — अग्नि और सोम। इन दोनों के ही अन्तर्गत अन्य सभी का अन्तर्भाव कर दिया है। इन्द्र को उन्होंने भी प्राणशक्ति ही माना है।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द के मत का आधार यौगिक प्रक्रिया है। उनका कथन है — "किसी मंत्र विशेष का जप करने से अर्थात् उस पर चित्त को एकाग्र करने से शक्ति जिस रूप में प्रकट होती है, उसको उस मंत्र का देवता कहते हैं। यदि विधि से चित्त एकाग्र करने पर किसी मंत्र विशेष के द्वारा संहार करने वाली शक्ति उद्‌बुद्ध हो तो यह कहा जायेगा कि उस मंत्र के देवता रुद्र हैं। इसी प्रकार इन्द्र, विष्णु आदि विभिन्न मंत्रों के देवता कहे जाते हैं। वहाँ उद्देश्य किसी व्यक्ति से नहीं, शक्ति से होता है जो उस मंत्र के द्वारा जागती है।..... इन्द्र, विष्णु आदि निश्चय ही व्यक्तियों के नाम हैं। ये देवगण हैं। देवगण पुराने कल्पों के प्रचण्ड तपस्वी और योगी हैं जिन्होंने बहुत-से देवताओं, बहुत-सी शक्तियों पर अपने तप और साधना से अधिकार प्राप्त किया है और अब जगत् के संचालन में भाग लेते हैं।[१]

१— वेदार्थ प्रवेशिका, पृष्ठ ४९

देवताओं की संख्या — ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनेक स्थलों पर तैंतीस देवों का उल्लेख है। वाजसनेयि संहिता (३३.७) में देवों की संख्या ३३३९ बतला दी गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ३३ संख्या का ही समर्थन किया गया है। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण में इस संख्या का विभाजन यों किया गया है — ८. वसुगण, ११ रुद्रगण १२ आदित्य। ३३ वें देवता के विषय में ब्राह्मणकारों के मध्य मतभेद है। शतपथब्राह्मण जहाँ इस सन्दर्भ में द्यौस् और पृथिवी अथवा इन्द्र और प्रजापति का नाम लेता है वहीं ऐतरेय ब्राह्मण वषट्कार और प्रजापति का।

निरुक्त में पहले ३ देवता बतलाए गए हैं और तत्पश्चात् एक ही (अग्नि) पर वल दिया गया हैं —

'तिस्र एव देवताः' इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवी स्थानो वायुर्वेन्द्रोवाऽन्तरिक्ष स्थानः सूर्यो द्युस्थानः — (निरुक्त ७.५)।

तथा — 'स न मन्येतायमेवाग्निरिति। अप्येते उत्तरे अग्नी उच्येते' (वही ७.१६)।

यास्क के अनुसार इन्द्रादि नाम या रूप अग्नि के ही हैं — 'इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति' — (वही ७.१८)।

दुर्गाचार्य और सायण ने भी इसे स्वीकार किया है। 'इन्द्र' मित्रं वरुणमग्निमाहु': प्रभृति मंत्र की व्याख्या करते हुए सायण का कथन है — 'यद्यपीन्द्रादयस्तत्र तत्र हूयन्ते तथापि परमेश्वरस्यैवेन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः - (ऋग्भाष्यभूमिका)

दुर्गाचार्य के शब्दों में — 'इन्द्रं मित्रं वरुणम् इत्येत्तैरभिधानैः अग्निमाहुः सतत्वविदः।'

किन्तु यास्क की अपेक्षा कुछ परवर्ती विचारक शौनक तीन वर्गों के ही पक्ष में हैं — प्रथमो भजते त्वासां वर्गोऽग्निमिह दैवतम्। द्वितीयो वायुमिन्द्रं वा तृतीयः सूर्यमेव च।। वृहद्देवता, १.५)।

मंत्रों में देवता का विनिश्चय — यास्क का कथन है कि वस्तु की कामना से एक द्रष्टा जिस किसी देवता की स्तुति करता है वही उस मंत्र का देवता होता है — 'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।

बृहद्देवता में शौनक ने भी इसी की पुष्टि की है —

अर्थमिच्छनृषिर्देवं यं यमाहायमस्त्विति।
प्राधान्येन स्तुवन्भक्त्या मन्त्रस्तद्देव एव सः।।

जहाँ प्रत्यक्ष रूप से देवता का उल्लेख नहीं होता उस स्थल के विषय में शौनक का मत है कि यदि किसी मंत्र में देवता का नाम मध्यम पुरुष में आता है तो भी उसी को उस मंत्र का देवता समझना चाहिए क्योंकि ऐसे पदों का यही लक्षण है —

प्रत्यक्षं देवतानाम् यस्मिन्मंत्रेऽभिधीयते।
तामेव देवतां विद्यान् मन्त्रे लक्षणसम्पदा॥

(बृ०१.११)

वैदिक देवताओं का क्रम — यद्यपि मैक्डोनेल और कीथ ने द्युस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय और पृथिवीस्थानीय — देवताओं का यह क्रम स्वीकार किया है किन्तु हमारी दृष्टि में इसे अपनाना अनुपयुक्त है। 'पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौः' का क्रम ही ठीक है क्योंकि यह आरोहात्मक है। इस क्रम में हम पृथिवी से ऊद्र्ध्व लोकों में जाते हैं जवकि उपर्युक्त क्रम में द्युलोक से मानों हम नीचे गिर रहे हैं। निरुक्तकार ने भी आरोहात्मक क्रम ही अपनाया है।

प्रमुख वैदिक देवता अग्नि

यह यज्ञाग्नि के मूर्त्त रूप हैं तथा ऋग्वेद के २०० सूक्तों में संस्तुत हैं। श्री अरविन्द ने अग्नि को मनुष्य की दिव्य संकल्पशक्ति और विवेक का प्रतीक माना है।[१] अग्नि के मानवीकरण में यज्ञात्मक पक्ष को स्पष्ट ही प्रधानता मिली है। अग्नि घृतपृष्ठ, घृतमुख, सुन्दर जिह्वा वाले, घृतकेश, ज्वालकेश या हरितकेश तथा हरी दाढ़ी वाले हैं। इनके जबड़े तीक्ष्ण हैं; दाँत-स्वर्णिम उज्ज्वल या लोहे के समान हैं। इनके तीन मस्तक और सात रश्मियाँ हैं। घृत अग्नि का नेत्र हैं। 'सहस्रमुष्क' विशेषण भी इनके लिए आया है।

वलिष्ठ वृषभ, अश्वों, वत्स (बछड़ा) और एक दिव्य पक्षी के समान अग्नि को कहीं-कहीं वतलाया गया है।

अग्नि का भोजन काष्ठ या घृत है और पेय तरल घृत। वे तीक्ष्ण दाँतों से वनों को खाते या चबाते हैं। इन्हें वह मुख माना गया है जिससे देवगण हविष्य को खाते हैं।

इनकी उज्ज्वलता की प्रचुर चर्चा की गई है। वे अद्भुत प्रकाश तथा प्रदीप्त, उज्ज्वल और स्वच्छ ज्वालाओं वाले हैं। इनकी आभा उषस् और सूर्य-रश्मियों तथा वर्षा-मेघ की विद्युत् सदृश है। अन्धकार को यह शमन करते हैं। उषाकाल में प्रज्वलित किए जाने के कारण 'उषर्बुध' कहलाते हैं।

१— Agni first, for without him the sacrificial flame can not burn on the altar of the soul. That flame of Agni is the seven tongued power of the will, a force of God intinct with knowledge. This conscious and forceful will is the immortal guest in our mortality, a pure priest and a divine worker, the mediator between earth and heaven. It carries what we offer to the higher powers and brings back in return their force and light and joy into our humanity'

— *Hymns to the Mystic Fire, Introduciton, Page XXXI.*

अग्नि का भ्रमणपथ काला है। अग्नि धूमकेतु है। वे प्रकाशमान रथ पर चलते हैं। उनके रथ को अरुणिम अश्व खींचते हैं। अग्नि के पिता द्यौस् हैं और माँ पृथिवी। कहीं-कहीं यह असुर, जल और इला के पुत्र भी कहे गए हैं। इनका दैनिक पार्थिव जन्म दो अरणियों और १० कन्याओं (अरणिमन्थन करने वाली उंगलियों) से होता है। यह 'सहसः' — (शक्ति) सुनु भी हैं। ये युवा और वृद्ध भी हैं। आकाश अथवा अन्तरिक्ष से अग्नि के जन्म का भी बहुधा उल्लेख है। अग्नि की प्रकृति त्रिगुणात्मक है। कहीं-कहीं वरुण और इन्द्र को अग्नि का सहोदर माना गया है। कहीं-कहीं अग्नि मित्र के साथ भी समीकृत है। एक ऋग्वेदीय स्थल पर अग्नि पाँच देवियों के अतिरिक्त एक दर्जन देवों के साथ समीकृत है। अपने प्रकाश से अग्नि राक्षसों को भगा देते हैं। अग्नि यज्ञ में देवों को लाते हैं और प्रायः यज्ञ भाग को देवताओं तक पहुँचाते हैं। ऋत्विज, विप्र आदि विशेषणों का इसीलिए अग्नि के निमित्त वहुल प्रयोग है पौरोहित्य कर्म अग्नि का सर्वाधिक वैशिष्ट्य है। वे शवभक्षक (कव्याद) भी है। अग्नि प्रथम अङ्गिरस द्रष्टा है। 'जातवेदस्' उपाधि भी उनके लिए व्यवहृत है। वे स्तोताओं की शत-शत लौह-प्राचीरों द्वारा रक्षा करते हैं। उन्हें सब प्रकार की समृद्धियाँ प्रदान करते हैं।

लैटिन 'इग्नि-स' और स्लैवोनिक 'अग्नि' के साथ भी अग्नि का साम्य स्थापित किया जाता है। इनके अन्य प्रमुख विशेषण हैं — वैश्वानर, तनूनपात्, नराशंस, ऋतगोपा, विश्ववेदा, पुरुप्रिय, गातुवित्तम, मधुहस्त्य, विभावसु आदि।

सविता अपने विख्यात गायत्री छन्दःस्क मन्त्र के कारण सविता का वर्तमान भारतीय जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है ये देव के स्थान पर देवीरूप प्राप्त करने की दिशा में तेजी से अग्रसर हैं।

वैदिक छन्द — वैदिक मन्त्रों के सम्यक् उच्चारण के लिए छन्दो-ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। कात्यायन के अनुसार जो व्यक्ति ऋषि, देवता और छन्द जाने बिना ही वेदाध्ययन करता है, वह पापी होता है — 'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो-दैवत-ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति।'

छन्दोविषयक प्राचीन विवरण निम्नाङ्कित ग्रन्थों में सुलभ है — शांखायन श्रौतसूत्र, ऋक् प्रातिशाख्य, सामवेदीय निदान सूत्र, पिंगल प्रणीत छन्दः सूत्र तथा कात्यायन-कृत छन्दोऽनुक्रमणियाँ। यों इनमें सर्वाधिक सामग्री पिंगलाचार्य के छन्दः सूत्र में ही है।

वैदिक छन्दों की मुख्य विशेषतायें — ये वृत्तात्मक हैं अक्षर-गणना इनका मुख्य आधार है। गुरु और लघु का यहाँ कोई महत्त्व नहीं है। वैदिक छन्दों में एक, दो, तीन, चार और पाँच पाद तक होते हैं — जबकि लौकिक छन्दों में प्रायः चार पाद ही होते हैं।

मुख्य वैदिक छन्द

छन्दों-नाम	प्रत्येक पाद में अक्षर					योग
गायत्री	८	८	८			२४
उष्णिक्	८	८	१२			२८
अनुष्टुप्	८	८	८	८		३२
वृहती	८	८	१२	८		३६
पङ्क्ति	८	८	८	८	८	४०
त्रिष्टुप्	११	११	११	११		४४
जगती	१२	१२	१२	१२		४८

इनके अनेक अवान्तर भेदोपभेद होते हैं।[1]

वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत में अन्तर — वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत में ध्वनि, सन्धि, छन्द, रूप, धातुरूप, कृदन्त और तद्धित प्रत्यय, उपसर्गों के प्रयोग और अन्य दृष्टियों से विपुल अन्तर है। उसका कुछ निदर्शन यहाँ कराया जा रहा है —

(१) लौकिक संस्कृत में ह्रस्व और दीर्घ दो ही स्वर हैं, किन्तु वेद में त्रिमात्रिक प्लुत स्वर भी है — 'आसीत् विन्दती ॐ ३।'

(२) वैदिक भाषा में स्वराघात का वहुत महत्त्व है। लौकिक संस्कृत में स्वर-प्रक्रिया लुप्त हो गयी है।

(३) शब्द-रूपों की दृष्टि से अकारान्त पुलिङ्ग शब्दों का रूप प्रथमा बहुवचन में 'अस्' और 'असस्' दोनों प्रत्ययों में से किसी के भी लगने से बन सकता है, यथा — 'देवाः तथा 'देवासः।' लौकिक संस्कृत में केवल 'अस्' (जस्) प्रत्यय है।

(४) तृतीया बहुवचन में, वैदिक भाषा में, अकारान्त शब्दों के रूप दो प्रकार के हैं — 'देवेभिः' और 'देवैः।' लौकिक संस्कृत में केवल अन्तिम रूप है।

(५) अकारान्त शब्दों का प्रथमा द्विवचन 'आ' लगने से भी बन जाता है — अश्विना, उभा। ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का तृतीया एकवचन 'ई' लगकर भी बन जाता है — 'सुष्टुती।'

१— इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए पं० युधिष्ठिर मीमांसक का 'वैदिक छन्दो मीमांसा' ग्रन्थ देखना चाहिए।

(६) अनेक स्थानों पर सप्तमी का एकवचन लुप्त हो जाता है, यथा — 'परमे व्योमन्'। लौकिक संस्कृत में यह 'व्योम्नि' या 'व्योमनि' है।

(७) अकारान्त नपुंसक लिङ्गगत शब्दों का बहुवचन 'आ' तथा 'आनि' दोनों प्रत्ययों के योग से सिद्ध हो जाता है — 'विश्वानि अद्‌भुता।' लौकिक संस्कृत में केवल 'आनि' प्रत्यय है।

(८) वैदिक भाषा में क्रियापदों की रचना की दृष्टि से उत्तम पुरुष बहुवचन (वर्तमान काल) में 'मसि' तथा 'मस्' दोनों प्रत्यय प्राप्त होते हैं। 'मसि का उदाहरण — 'मिनीमसि द्यविद्यवि।' लौकिक संस्कृत में केवल 'मस्' मिलता है — 'मिनीमः'।

(९) लोट् लकार में मध्यम पुरुष, बहुवचन के 'त, तन, थन्, तात' आदि अनेक प्रत्यय हैं; यथा — 'श्रृणोत, सुनोतन, यतिष्ठन्, वृणुतात्।'

(१०) यह आवश्यक नहीं कि उपसर्ग ठीक क्रिया से पहले ही आए। वह कहीं भी आ सकता है; हाँ, अर्थ करते समय अवश्य क्रिया से पहले युक्त कर देते हैं।

(११) लौकिक संस्कृत में 'लिए' के अर्थ में केवल एक प्रत्यय है — 'तुमुन्', किन्तु वेद में इस निमित्त आधे दर्जन प्रत्यय हैं; यथा 'से (जीवसे), ध्यै (पिवध्यै), वै (दातवै, कर्तवै)' आदि।

(१२) आज्ञा तथा संभावना अर्थ में, वेद में एक नयी लकार है — लेट् लकार; जैसे 'तारिषत्' (बढ़ाओं)। लौकिक संस्कृत में यह नहीं मिलती।

ऋग्वेद में स्वराङ्कन

स्वराङ्कन वैदिक भाषा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' की कथा से द के छात्र परिचित ही हैं। स्वरहीन मन्त्र वाग्वज्र बनकर यजमान को नष्ट कर डालता है। स्वर तीन हैं — उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। प्रत्येक वेद में स्वराङ्कन की पद्धति भिन्न-भिन्न है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने 'वैदिक स्वर मीमांसा' ग्रन्थकार में इस पर विस्तार से विचार किया है।

ऊपर वैदिक व्याकरण के कुछ प्रमुख नियमों का ही उल्लेक किया गया है। विशेष जानकारी के लिए ये पुस्तकें अवलोकनीय हैं —

(१) वैदिक व्याकरण — डॉ० रामगोपाल

(२) संस्कृत ग्रामर — डब्ल्यू० डी० ह्विटनी

(३) संस्कृत ग्रामर फार दि स्टूडेन्टस — ए० ए० मैक्डॉनेल

(४) सिद्धान्त कौमुदी — वैदिकी स्वर-प्रक्रिया

(५) ऋक्प्रातिशाख्य

यहाँ ऋग्वेद की स्वराङ्कन-पद्धति के विषय में कुछ नियमों का उल्लेख किया जा रहा है।

ऋग्वेद में उदात्त पर कोई चिन्ह नहीं लगाया जाता है; अनुदात्त को आड़ी रेखा (—) से अङ्कित किया जाता है और स्वरित को खड़ी रेखा (|) से।

(१) प्रत्येक पद में एक उदात्त स्वर होता है; किन्तु इसके दो अपवाद हैं —

(क) जब कोई भी स्वर उदात्त नहीं होता;

(ख) जब एक पद में दो उदात्त होते हैं।

(क) सर्वनाम शब्दों के वैकल्पिक रूप — मा, त्व, मे, ते, नौ, वाम् आदि उदात्तहीन होते हैं; च, उ, वा, इव, ध, ह, चित्, स्वित आदि निपात उदात्तहीन होते हैं; सम्बोधन आमन्त्रित, (Vocative) जब पाद के प्रारम्भ में न हो तो उदात्तहीन होता है; मुख्य वाक्य की क्रिया सर्वानुदात्त होती है।

(ख) 'तवै' से वने 'एतवै' आदि पदों में एक से अधिक उदात्त होते हैं; देवता द्वन्द्व समास में दो उदात्त होते हैं, यथा — 'मित्रावरुणा।'

(२) उदात्त के वाद आने वाला अनुदात्त नियम से स्वरित हो जाता है, यदि उसके वाद कोई उदात्त या स्वरित न हो।

(३) स्वरित के वाद आने वाले विना चिह्न के वर्ण 'प्रचय' कहलाते हैं। स्वरित के वाद कई वर्ण प्रचय हो सकते हैं। स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्त प्रचित हो जाते हैं। वाक्य के अन्त में जव स्वरित के वाद कई प्रचय (या एकश्रुति) रहते हैं तो उन्हें बिना चिह्न के छोड़ देते हैं और अन्त में अनुदात्त को भी चिह्नितं नहीं करते।

(५) समास में जव एक ही शब्द की आवृत्ति हो, तो पहले पद पर उदात्त होता है; यथा — अ ह र ह :

(६) वहुव्रीहि में प्रथम पद उदात्त होता है।

(७) सामान्य तत्पुरुष में अन्तिम पद उदात्त होता है।

(८) जिन तत्पुरुष समासों का उत्तरपद 'पति' शब्द होता है, उनमें दो उदात्त होते हैं — 'बृहस्पति')

(९) द्वन्द्व समास के उत्तरपद पर उदात्त होता है — अ हो रात्राणि

(१०) जिन द्वन्द्व समासों में देवताओं के नाम होते हैं और दोनों द्विवचनान्त होते हैं तो दोनों पदों पर उदात्त होते हैं।

(११) यदि मुख्य क्रिया वाक्य या पाद के प्रारम्भ में आए तो उस पर उदात्त होता है।

(१२) सम्बोधन के तुरन्त बाद क्रिया आए तो उस पर भी उदात्त होता है।

(१३) मुख्य वाक्य में उपसर्ग पर उदात्त होता है।

(१४) दो उपसर्ग हों तो दोनों स्वतन्त्र और उदात्तयुक्त होते हैं।

(१५) स्वरित प्रमुखतः दो प्रकार होता है —

(क) सामान्य स्वरित — उदात्त के बाद आने वाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है, जब

उसके बाद कोई उदात्त न हो। अभिनिहित सन्धि होने पर सामान्य स्वरित का नाम अभिनिहित स्वरित हो जाता है। क्षैप्रसन्धि होने पर क्षैप्रस्वरित कहलाता है।

(ख) जिसमें पहले उदात्त न हो, उस स्वरित को जात्यस्वरित कहते हैं।

(१६) कम्प — जात्य, अभिनिहित, क्षैप्र एवं प्रश्लिष्ट स्वरित के बाद जब कोई उदात्त आता है तो कम्प होता है। जब जात्य स्वरित ह्रस्व स्वर पर हो तो कम्प को स्वरित एवं अनुदात्त युक्त

एक (१) के अङ्क से व्यक्त करते हैं — वीर्य १

जब जात्य स्वरित दीर्घ स्वर पर हो तो कम्प को स्वरित एवं अनुदात्तयुक्त तीन

(३) के अङ्क से निर्दिष्ट करते हैं —तन्वा ३ सं

(१७) सन्धियों में निम्नलिखित स्वर होते हैं —

(क) उदात्त के बाद उदात्त की सन्धि हो तो उदात्त होता है; उ + उ = उ।

(ख) अनुदात्त के साथ उदात्त की सन्धि होने पर उदात्त होता है - अ + उ = उ ।

(ग) स्वरित के साथ उदात्त की सन्धि होने पर उदात्त होता है। स्व + उ = उ।

(घ) जात्यस्वरित + उदात्त = उदात्त।

संहिता पाठ से पदपाठ बनाने के नियम

वेद की रक्षा के उपायों के अन्तर्गतत वैदिक मन्त्रों के अनेक पाठों का उल्लेख हो चुका है। उन्हीं में से एक है पदपाठ। संहितापाठ से मन्त्रों को पदपाठ में अन्तरित करते समय निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना चाहिए —

(१) संहिता पाठ की सन्धियों को विच्छिन्न कर, पदों को अलग-अलग रखना चाहिए; यथा — इन्द्रेहि —इन्द्र। आ। इहि।

(२) विसर्ग को यदि 'ओ', लोप, 'रे',या 'स्' या 'स्' हुआ हो तो उस शब्द को मूल सविसर्ग स्थिति में रख देना चाहिए — देवो देवेभिः = देवः।

देवेभिः। प्रातरिन्द्रम् = प्रातः। इन्द्रम्।

(३) संहितापाठ के सन्धिजन्य 'ष' को 'स' और 'ण' को 'न' कर देना चाहिए।

(४) संहिता पाठ में सन्धि या अन्य छान्दस् कारणों से यदि कुछ वर्णों का लोप हुआ हो, विशेष रूप से 'ईम्' का 'म्' और द्विवचनान्त शब्दों का 'आ' तो पद पाठ में इन्हें लगा देना चाहिए।

(५) शब्दों के साथ जुड़े विभक्ति-प्रत्ययों को कहीं-कहीं अलग कर दिया जाता है और शब्द तथा प्रत्यय के मध्य अवग्रह लगा दिया जाता है — यथा — हरिभ्याम् = हरिऽभ्याम्। भ्याम्, भिस् और भ्यस् को शब्दों से अलग कर देते हैं किन्तु द्वाभ्याम्, अष्टाभि, देवेभ्यः अस्मभ्यम् और तुभ्यम् इस नियम के अपवाद हैं। इन्हें अवग्रह लगाकर पृथक् नहीं दर्शाते।

(६) जब सप्तमी बहुवचन का विभक्ति चिह्न 'सु' 'षु' में न परिवर्तित हुआ हो, और ना ही उसके पहले दीर्घ स्वर हो तो शब्द से अलग कर दिया जाता है।

(७) उपसर्ग जब शब्द के साथ हों, तो उन्हें अलग दिखाया जाता है, प्रचेता = प्रऽचेताः।

(८) शब्दों के साथ लगने वाले प्रत्ययों को अलग कर दिया जाता है; यथा — वृत्रहा = वृत्रऽहा।

(९) निषेधार्थक 'अन' और 'अ' उपसर्ग अलग नहीं किए जाते हैं।

(१०) यदि किसी पद में एकाधिक उपसर्ग हों, तो पहले उपसर्ग को अवग्रह से अलग कर देते हैं — सुप्रवचनम् = सुऽप्रवचनम्।

(११) किसी पद के साथ यदि 'इव' लगा हो तो 'इव' को अवग्रह से अलग कर दिया जाता है — प्रगर्धिनी इव = प्रगर्धिनीऽइव।

(१२) समस्त पदों को अवग्रह से पृथक् कर दिया जाता है और उन्हें मूल रूप में रखा जाता है — पुरूवसु =पुरूऽवसु।

(१३) जिस समास का पहला पद 'द्वा', हो, उसे अलग नहीं करते; यथा — द्वादश। 'वनस्पति' को भी अलग नहीं करते।

(१४) अनार्ष इतिकरण — निम्नलिखित स्थितियों में प्रगृह्य पदों के आगे पदपाठ में 'इति' लग जाता है —

(क) 'ई' जब प्रथमा, द्वितीय का द्विवचनान्त हो या सप्तमी में हो तो इन द्विवचनान्त शब्दों या सप्तमी के रूप के बाद 'इति' लगता है — पति = पती इति; रोदसी इति।

(ख) 'अमी' की 'ई' भी प्रगृह्य होती है — इसे भी इतियुक्त कर दिया जाता है।

(ग) द्विवचन या सप्तमी के रूपों में जब शब्द के अन्त में 'ऊ' हो तो उसके साथ भी 'इति' लगाया जाता है —इन्द्रवायु इति, धृष्णू इति। चमू इति।

(घ) 'उ' के स्थान पर पद पाठ में 'ऊँ इति' हो जाता है।

(ङ) एकारान्त द्विवचन भी प्रगृह्य संज्ञक होता है — अबुध्यमाने इति।

(च) अस्मे, युष्मेत, त्वे के बाद 'इति' लगता है।

(छ) ओकारान्त सम्बोधन के आगे भी 'इति' लगता है — विष्णो इति।

(ज) 'अथो, उतो, तत्वो, भो' के 'ओ' के बाद भी इति लगता है।

(झ) होतर और नेष्टर आदि शब्दों में विसर्ग होने से पहले मूलतः 'ट्' रहा हो तो उसके बाद इति लगता है — होतरिति।

(ञ) ईकारान्त एवं ऊकारान्त शब्द के साथ 'इव' आए तो उस शब्द में इव के साथ इति लगता है और दुहराया जाता है — दम्पती इव इति दम्पतीऽइव।

(ट) 'स्युः' और 'अकः' आदि शब्दों के बाद इति लगाकर दुहरा दिया जाता है — 'अकरित्यकः'।

(१५) यदि कहीं छान्दस् दीर्घ हुआ हो, तो उसे ह्रस्व कर दिया जाता है — अच्छा वद = अच्छ वद।

(१६) विवृत्ति के व्यवधान को दूर करने के लिए लगाए गए अनुस्वार को हटा दिया जाता है; यथा — शाशदानो एधि = शाशदान एधि।

(१७) स्वराङ्कन बदल जाता है। यदि अन्तोदात्त के बाद आने वाला अनुदात्त स्वरित में बदला हो, तो वह पूर्ववत् अनुदात्त हो जाता है; क्योंकि पदपाठ में प्रत्येक पद की स्वतन्त्र सत्ता होती है, पूर्वपद से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। स्वरित के अनुदात्त में परिवर्तित होने पर परवर्ती प्रचय भी अनुदात्त ही हो जाते हैं।

मण्डूक सूक्त का परिचय

वस्तुतः यह पर्जन्य सूक्त है, जिसमें मण्डूक ही देवता है। वृष्टि या वर्षा की अभिलाषा करने वाले के लिए इसका जप विहित है। मण्डूक वास्तव में वृष्टिदायक पर्जन्य के अग्रदूत हैं। उन्हें सन्तुष्ट करने से पर्जन्य देवता द्वारा मानवों को अभीष्ट वस्तुयें प्राप्त करने में उनकी सहायता मिलती है। इस सूक्त का सारांश यह है कि देवों के द्वारा निर्धारित समय पर आनन्द एवं सोत्साह उपस्थित होकर ये मेढक अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं और अपने साथ ही हम सबकी आयु-वृद्धि भी कर देते हैं।

प्रस्तुत सूक्त की विशेषता वर्षागम के समय यज्ञ-सम्पादनादिरूप अपने कार्यों को पुनः प्रारम्भ करने वाले ब्राह्मणों तथा उसी काल में पुनर्जीवन देने वाली जलराशि के स्पर्श से नव जीवन प्राप्त करने वाले मण्डूक के मध्य सादृश्य-स्थापना है। अतः एक ओर इसमें वेदपाठी ब्राह्मणों के कर्त्तव्यों का संस्तवन है और दूसरी ओर मण्डूकों के गुणों को उपमाओं और रूपकों के माध्यम से प्रस्तुत करने वाली रमणीय कविता के भी दर्शन होते हैं।

मैक्समूलर, गेल्डनर आदि ने इस सूक्त में वेदपाठी ब्राह्मण के प्रति काव्यपूर्ण उपहास का अस्तित्व माना है, किन्तु मैक्डॉनेल, पाल थीमे, ओल्डनबर्ग, वेलणकर आदि इससे असहमत हैं। मैक्डॉनेल ने 'वैदिक रीडर' में इस सूक्त का परिचय प्रस्तुत करते हुए कहा है — The hymn, intended as a spell to produce rain, is a panegyric[१] frogs, who are compared during the drought to heated kettles, and are described as raising their voices together at the commencement of the rains like Brahmin pupils repeating the lessons of their teacher.

अधिकांश रूप में यह वक्तव्य उचित प्रतीत होता है।

१— प्रशस्ति
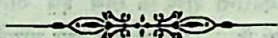
श्रद्धासूक्तम्

(ऋ० सं० १०.१५१)

'श्रद्धया' इति त्रयोविंशं सूक्तमानुष्टुभं श्रद्धादेवत्यम्। काम-गोत्रजा श्रद्धानामर्षिका। तथा चानुक्रम्यते— 'श्रद्धा कामायनी श्राद्धमानुष्टुभं तु' इति। लैङ्गिको विनियोगः।

सूक्तपरिचय — मण्डल — १०, सूक्त — १५१। ऋषि — श्रद्धा (कामगोत्रोत्पन्न) देवता — श्रद्धा, छन्द — अनुष्टुप्।

संहितापाठः

१. श्रद्धयाग्निः समिध्यते
श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि
वचसा वेदयामसि॥ १॥

पदपाठः

श्रद्धया। अग्निः सम्। इध्यते। श्रद्धया। हूयते। हविः।
श्रद्धाम्। भगस्य। मूर्धनि। वचसा। आ। वेदयामसि।।

अन्वय — श्रद्धया अग्निः समिध्यते। श्रद्धया हविः हूयते। भगस्य मूर्धनि श्रद्धां वचसा आ वेदयामसि।

शब्दार्थ — श्रद्धया = श्रद्धा से, समिध्यते = दीप्त की जाती है हूयते = आहुति

दी जाती है, हविः = पुरीडाशादि अन्न, वचसा = स्तुति से, वेदयामसि = प्रार्थना करते हैं।

अनुवाद — श्रद्धा से अग्नि प्रदीप्त की जाती है। श्रद्धा से हवि दी जाती है, श्रद्धा (जो) प्राप्य धन (भाग्य) की प्रधान है उसकी हम स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करते हैं।

सायणभाष्य — पुरुषगतोऽभिलाषविशेषः श्रद्धा। तया श्रद्धया अग्निः गार्हपत्यादिः समिध्यते संदीप्यते। यदा हि पुरुषे श्रद्धाग्निगोचर आदरातिशयो जायते तदैव पुरुषोऽग्नीन् प्रज्वालयति नान्यथा। श्रद्धया। श्रद्धया एव हविः पुरोडाशादिहविश्च हूयते। आहवनीये प्रक्षिप्यते यद्वा। अस्य सूक्तस्य दुष्ट्या श्रद्धाख्याग्निः समिध्यते। श्रद्धाम् उक्तलक्षणायाः श्रद्धायाः अधिष्ठातृ देवतां भगस्य भजनीयस्य धनस्य मूर्धनि प्रधानभूते स्थानेऽवस्थितां वचसा वचनेन स्तोत्रेण आ वेदयामसि अभितः प्रख्यापयामः। इदन्तो मसिः।।

विवृत्ति — (क) व्याकरण — समिध्यते = सम् + इन्ध् (इध्) प्र०, पु० एक०। हूयते = हू, लट्, प्र० पु० एक०। वेदयामसि = विद, लट्, उ० पु० वहु०। मध्य में 'आ' तथा 'इदन्तो मसि' से 'मसि' हुआ है।

(ख) विशेष — (१) इस सूक्त की दृष्टि से श्रद्धा — 'अग्नि' का नाम है जो प्रदीप्त की जाती है। (२) वेदयामसि' वैदिक रूप है। (३) यहाँ अनुष्टप् छन्द है।

संहितापाठः

२. प्रियं श्रद्धे ददतः
प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजे, षु यज्व
स्विदं म उदितं कृधि।।२।।

पदपाठः

प्रियम्। श्रद्धे। ददतः। प्रियम्। श्रद्धे। दिदासतः।।
प्रियम्। भोजेषु। यज्वऽसु। इदम्। मे। उदितम्। कृधि।।

अन्वय — (हे) श्रद्धे, ददतः प्रियम् (कृधि), (हे) श्रद्धे, दिदासतः प्रियम्। (कृधि), भोजेषु यज्वसु प्रियं (कृधि), में उदितम् (प्रियं) कृधि।

शब्दार्थ — ददतः = दाता का, प्रियम् = अभीष्ट, कृधि = पूर्ण करो, दिदासतः = देने के इच्छुक का, भोजेषु = उदार, यज्वसु = यजमानों का, मे = मेरे, उदितम् = कथन के अभीष्ट को।

अनुवाद — हे श्रद्धा देवि ! दाता का अभीष्ट पूरा करो, देने के इच्छुक व्यक्ति का अभीष्ट पूर्ण करो, उदार यजमानों का अभीष्ट पूर्ण करो, मेरी इस उक्ति (के अभीष्ट) को पूरा करो।

सायणभाष्य — हे श्रद्धे! ददतः चरुपुरोडाशादीनि प्रयच्छतो यजमानस्य प्रियम् अभीष्टफलं कुरु। दिदासतः दातुमिच्छतश्च हे श्रद्धे प्रियं कुरु। मे मम संबन्धिषु भोजेषु भोक्तृषु भोगार्थिषु यज्वसु कृतयज्ञेषु जनेषु च इदम् उदितम् प्रियं कृधि कुरु।।

विवृत्ति — (क) व्याकरण — ददतः = दा (दद) + शतृ (अत) ष0 एक0। दिदासतः = द + सन् (स) दिदास् + शतृ (अत्) ष0 एक0। उदितम् = उत् + इक्त (त)। कृधि = कृ + लोट्, म0 पु0 एक0 'हि' को 'धि'।

(ख) विशेष — (१) 'कृधि' वैदिक रूप है। (२) प्रस्तुत मन्त्र में 'अनुष्टुप्' छन्द है।

संहितापाठः

३. यथा देवा असुरेषु
श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्व
स्वस्माकमुदितं कृधि।।३।।

पदपाठः

यथा। देवाः। असुरेषु। श्रद्धाम्। उग्रेषु चक्रिरे।।
एवम्। भोजेषु। यज्वऽसु। अस्माकम्। उदितम्। कृधि।।

अन्वय — देवाः यथा उग्रेषु असुरेषु श्रद्धां चकिरे, एवं भोजेषु यज्वसु (एवं श्रद्धां कृधि) अस्माकं उदितं कृधि।

शब्दार्थ — असुरेषु = असुरों में, उग्रेषु = प्रचण्ड बलशालियों में, चक्रिरे = किया था, एवम् = उसी प्रकार, यज्वसु = यजमानों में, उदितम् = उक्ति के अभीष्ट फल को, कृधि =करो।

अनुवाद — जिस प्रकार देवों ने प्रकृष्ट बलशाली असुरों में श्रद्धा उत्पन्न की थी, उसी प्रकार (तुम) उदार यजमानों में (श्रद्धा उत्पन्न करो), हम सब की इस उक्ति के अभीष्ट फल को पूर्ण करो।

सायणाभाष्य — देवाः इन्द्रादयः असुरेषु उद्‌गूर्णबलेषु यथा श्रद्धां चक्रिरे अवश्यमिमे हन्तव्या इत्यादरातिशयं कृतवन्तः एवं श्रद्धावत्सु भोजेषु भोक्तृषु भोगार्थिषु यज्वसु यष्टृषु अस्माकम् अस्मत्सम्बन्धिसु तेषु उदितं तैरुक्तं फलजातं कृधि कुरु।।

विवृत्ति — (क) **व्याकरण** — चक्रिरे = कृ + लिट्, प्र0 पु0 वहु0 आत्मनेपद।

'असुरेषु' का अर्थ ग्रिफिथ

द्यौस्, वरुण तथा अन्य कुछ देवों 'में' करते हैं जबकि सायण 'राक्षस' अर्थ करते हैं। (३) प्रस्तुत मन्त्र में 'अनुष्टप्' छन्द है।
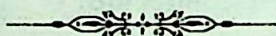
विश्वेदेवाः सूक्तम्

(ऋ० सं० ७.३५)

ऋषि — वसिष्ठ, **देवता** — विश्वेदेवाः **छन्द** — १-५ तथा ११,१२ त्रिष्टुप् ६,,८,१०,१५ निचृत् त्रिष्टुप्, ७, ९ विराट्, त्रिष्टुप्, १३, १४ भुरिक्पंक्ति।

संहितापाठः

शं न॑ इन्द्राग्नी भ॑वतामवो॑भिः शं न॑ इन्द्रावरु॑णा रा॒तह॑व्या।
शमिन्द्रासोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॑ इन्द्रापूषणा॒ वाज॑सातौ॥ १॥

कल्याण के लिए ... युद्ध और अन्य कार्यों में

पदपाठः

शम्। नः। इन्द्राग्नी इति॑। भवताम्। अव॑ःऽभिः। शम्। नः। इन्द्रावरु॑णा। रा॒तऽह॑व्या।
शम्। इन्द्रासोमा॑। सुवि॒ताय॑। शम्। योः। शम्। नः। इन्द्रापूषणा॑। वाज॑ऽसातौ।।1।।

अन्वय — इन्द्राग्नी नः अवोभिः शं भवताम् रातहव्या इन्द्रावरुणा नः शं (भवताम्) इन्द्रासोमा (नः) शं सुविताय (भवताम्) शं योः इन्द्रापूषणा वाजसातौ नः शं (भवताम्।।1।।

शब्दार्थ — **इन्द्राग्नी** = इन्द्र और अग्नि, **नः** = हमारे लिये, **अवोभिः** = रक्षण के द्वारा, **शं भवताम्** = शं भवताम् = शान्तिप्रद होवें, **रातहव्या** = यजमान के द्वारा प्रदत्त हवि वाले, **इन्द्रावरुणा** = इन्द्र और वरुण, **नः** = हमारे लिये, **शं भवताम्** = शान्तिप्रद होवें, **इन्द्रासोमा** = इन्द्र और सोम, **नः** = हमारे लिये, **शं** = शान्ति, **सुविताय** = (और) कल्याण के लिये, (भवताम् = होवें), **शं** = शान्ति और सुख के

लिये (होवें), **योः** = विषयभोग सुख के निमित्त, **इन्द्रापूषणा** = इन्द्र और पूषा, **वाजसातौ** = युद्ध और अन्य लाभ में, **नः** = हमारे लिये, **शं** = शान्तिप्रद, (भवताम् = होवें)।।1।।

हिन्दी अनुवाद — इन्द्र और अग्नि हमारे लिये रक्षण के द्वारा शान्ति प्रदान करने वाले हों, यजमान के द्वारा प्रदत्त हवि वाले इन्द्र और वरुण हमारे लिये शान्तिप्रद हों, इन्द्र और सोम हमारे लिये शान्ति और कल्याण करने वाले हों। सुख के निमित्त इन्द्र और पूषा हमारे लिये शान्ति प्रदान करने वाले हों।।1।।

सायणभाष्य — 'शं न इन्द्राग्नी' इति पञ्चदशर्चं द्वितीयं सूक्तम्। अत्रेयमनुक्रमणिका — 'शं नः पञ्चोना शान्तिः' इति। वसिष्ठ ऋषिः। त्रिष्टुप् छन्दः। 'वैश्वदेवं ह' इत्युक्तत्वादिदमपि वैश्वदेवम्। महानाम्नीव्रत एतत् सूक्तं जप्यम्। तथा च सूत्रितं — 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः' (आश्व0 श्रौ0 ८.१४) इति। एव.... सु।

नः अस्माकमस्मभ्यं वा इन्द्राग्नी अवोभिः रक्षणैः शान्त्यै भवताम्। रातहव्या रातहव्यौ यजमानैर्दत्तहविष्कौ इन्द्रावरुणा इन्द्रावरुणावपि नः अस्मभ्यं शं शान्त्यै भवताम्। इन्द्रासोमा इन्द्रासोमावपि नः शं शान्त्यै सुविताय कल्याणाय च भवताम्। शं शान्त्यै सुखाय च। पुनरुक्तिरादरार्था। अथवा शं शमनहेतुकं सुखं योः विषयभोगनिमित्तं सुखमित्यपुनरुक्तिः। इन्द्रापूषणा इन्द्रापूषणावपि वाजसातौ युद्धे अन्नलाभे निमित्ते वा नः शं शान्त्यै भवतामित्यर्थः।।1।।

व्याकरण — इन्द्राग्नी, इन्द्रावरुणा, इन्द्रासोमा, इन्द्रापूषणा पदों में द्वन्द्वसमास हुआ है। इन्द्रावरुणा, इन्द्रासोमा तथा इन्द्रापूषणा में वैदिक आत्व हुआ है। इन्द्रः — इन्दति इति — 'इदि परमैश्वर्ये' धातु से 'ऋज्रेन्द्र' इत्यादि औणादिक् सूत्र से रन् प्रत्यय। अग्निः — अङ्गति इति 'अंगि गतौ' धातु से 'अङ्गेर्नलोपश्च' से नि प्रत्यय तथा नकार का लोप। वरुणः — व्रियते वृणोति वेति 'वृञ् वरणे' धातु से 'कृवृदादिभ्य उनन्' इस औणाद्रिक सूत्र से 'उनन्' प्रत्यय। सोमः — अमृतं सूते इति — इस अर्थ में 'अर्तिस्तुसु' — इत्यादि सूत्र से मन् प्रत्यय। पूषणः — पुष्णाति पूषति वा — 'पुष् पुष्टौ' अथवा 'पूष वृद्धौ' से 'श्वन्नुक्षन्' — इस सूत्र के द्वारा निपातनात् सिद्ध होता है।।1।।

टिप्पणी — 'रातहव्या' का अर्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस प्रकार किया है "रातं दत्तं हव्यं ग्रहीतुं योग्यं वस्तु याभ्यां तौ"। पण्डित जयदेव शर्मा इसका अर्थ ग्रहण करने और देने योग्य जल अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने वाले करते हैं। 'सुविताय' का अर्थ आचार्य सायण 'कल्याणाय' करते हैं जबकि महर्षि दयानन्द

सरस्वती 'श्वर्याय' करते हैं। इस मन्त्र का भावार्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं — "हे जगदीश्वर भवत्कृपा विद्युत्संगेन स्वपुरुषानर्थे भवद्रचितायां सृष्टौ वर्त्तमानेभ्यो विद्युदादिपदार्थेभ्यो वयमुपकारं ग्रहीतुं ग्राहयितुमिच्छामस्सोयमस्माकं प्रयत्नः सफलः स्यात्।" महर्षि दयानन्द सरस्वती 'इन्द्राग्नी' का अर्थ विद्युत् और अग्नि, इन्द्रावरुण का अर्थ विद्युत् और जल, इन्द्रासोमा का अर्थ विद्युत और ओषधिगण तथा इन्द्रापूषणा का अर्थ विद्युत् और वायु मानते हैं। प्रस्तुत मन्त्र में इन्द्र, अग्नि, वरुण, सोम, पूषा से शान्ति के लिये प्रार्थना की गयी है। इस मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है।।1।।

संहितापाठः

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २॥

पदपाठः

शम् । नः । भगः। शम् । ऊँ इति । नः। शंसः । अस्तु । शम् । नः
पुरम्ऽधि । शम् । ऊँ इति । सन्तु रायः ।
शम् । नः । सत्यस्य । सुऽयमस्य । शंसः। शम् । नः । अर्यमा ।
पुरुऽजातः । अस्तु ।।2।।

अन्वय — भगः नः शम् अस्तु नः शंसः शमु नः पुरन्धि शं रायः शमु सन्तु नः सुयमस्य सत्यस्य शंसः शं (अस्तु) नः पुरुजातः अर्यमा शम् अस्तु।।2।।

शब्दार्थ — भगः = भग देवता, नः = हमारे लिये, शम् = शान्ति प्रदान करने वाले, अस्तु = होवें, नः = हमारे लिये, शंस = नराशंस, शमु = शान्तिप्रद होंवे, नः = हमारे लिये, पुरन्धिः = पुरन्धि (अनेक बुद्धियाँ), शं = शान्तिदायक होवें, रायः = समस्त धन, शमु = शान्तिदायक, सन्तु = होवें, नः = हमारे लिये, सुयमस्य = शोभन यमयुक्त, सत्यस्य = सत्य का, शंसः = वचन, शं (अस्त) = शान्तिदायक (होवे), नः = हमारे लिये, पुरुजातः = अनेक बार आविर्भूत, अर्यमा = अर्यमा देवता, शम् = शान्तिदायक, अस्तु = होवें।।2।।

हिन्दी अनुवाद — भग देवता हमारे लिए शान्तिदायक होवें, नराशंस हमारे लिये शान्तिप्रद होंवे, पुरन्धि हमारे लिये शान्तिप्रद होवें, समस्त धन हमारे लिये शान्तिप्रद होवें, शोभन यमयुक्त सत्य का वचन हमारे लिये शान्तिदायक होवें, अनेक बार प्रादुर्भूत अर्यमा हमारे लिये शान्तिप्रद होंवें।।2।।

सायणभाष्य — नः अस्माकं शं शान्त्यै भगः देवः अस्तु भवतु। नः अस्माकं शम् शान्त्या एव शंसः नराशंसोऽस्तु भवतुः। नः अस्माकं शं शान्त्यै पुरंधिः बहुधीरप्यस्तु रायः धनान्यपि शमु शान्त्या एव सन्तु। नः अस्माकं सुयमस्य शोभनयमयुक्तस्य सत्यस्य शंसः वचनमपि शम् अस्तु। नः अस्माकं शं शान्त्यै पुरुजातः बहुप्रादुर्भावः अर्यमा देवोऽपि अस्तु।।2।।

व्याकरण — अर्यमा — इयति इति अस अर्थ में 'श्वन्नुक्षन् पूषन् — इत्यादि सूत्र से निपातनात् निष्पन्न होता है। सुयमस्य — शोभनः यमः सुयमः तस्य। यमः — यमयतीति — यम्+अच्। भगः — भज्यते इति 'भज सेवायाम्' धातु से 'पु सि0' इत्यादि सूत्र के द्वारा 'ध' प्रत्यय। शंसः - शंस्+अच् । अस्तु — 'अस्' धातु लोट् लकार प्र0 पु0 ए0 व0 ।।2।।

टिप्पणी — महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भगः का अर्थ ऐश्वर्य तथा 'शंसः' का अर्थ 'अनुशासन या प्रशंसा' किया है। पण्डित जयदेव शर्मा उन्हीं का समर्थन करते हैं। पुरन्धि का अर्थ आचार्य सायण बहुधीः करते हैं जबकि महर्षि दयानन्द सरस्वती 'पुरवः वहवः पदार्थाः ध्रियन्ते यस्मिन् स आकाशः'। सुयमस्य का अर्थ सायण 'शोभनयमयुक्तस्य' लिखते हैं जबकि महर्षि दयानन्द सरस्वती 'सुष्ठु नियमेन प्रापणीयस्य' यह अर्थ करते हैं। अर्यमा का अर्थ आचार्य सायण 'अर्यमा देवता' तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती 'न्यायकारी' करते हैं। इस मन्त्र में भग, नराशंस, पुरन्धि, समस्त धन, सत्यवाक् तथा अर्यमा से शान्ति के लिये प्रार्थना की गयी है। प्रस्तुत मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है।।2।।

संहितापाठः

शं नों धाता शमु धर्ता नों अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु॥ ३॥

पदपाठः

शम् । नः । धाता । शम् । ऊँ इति । धर्ता । नः । अस्तु । शम् । नः । उरूची । भवतु । स्वधाभिः ।

शम् । रोदसी इति । बृहती इति। शम् नः । अद्रिः । शम् । नः । देवानाम् । सुऽहवानि । सन्तु ।।3।।

अन्वय — धाता नः शम् अस्तु धर्ता नः शमु (अस्तु) उरूची स्वधामिः नः शं भवतु बृहती रोदसी शम् अद्रिः शं देवानां सुहवानि नः शं सन्तु।।3।।

शब्दार्थ — धाता = धाता, नः = हमारे लिये, शम् अस्तु = शान्तिप्रद होवें, धर्ता = धर्ता वरुण, नः = हमारे लिये, शमु (अस्तु) = शान्तिदायक होवें, उरूची = पृथिवी, स्वधामिः = अन्न के साथ, नः = हमारे लिये, शं भवतु = शान्ति देने वाली होवें, बृहती = महती, रोदसी = द्यावापृथिवी, शम् = हमारे लिये शान्ति दें, अद्रिः = पर्वत, नः = हमारे लिये, शं = शान्ति दें, देवानां = देवताओं की, सुहवानि = श्रेष्ठ स्तुतियाँ, नः = हमें, शं सन्तु = दें।।3।।

हिन्दी अनुवाद — धाता हमारे लिये शान्तिप्रद होंवें, धर्ता वरुण हमें शान्ति प्रदान करें, पृथिवी अन्न के साथ हमारे लिए शान्ति दे, महती द्यावापृथिवी हमारे लिये शान्ति दें, पर्वत हमें शान्ति दें, देवों की समस्त श्रेष्ठ स्तुतियाँ हमें शान्ति प्रदान करें।।3।।

सायणभाष्य — नः अस्माकं शं शान्त्यै धाता देवः अस्तु। नः अस्माकं शमु शान्त्या एव धर्ता पुण्यपापनां विधारयिता वरुणो देवोऽस्तु नः अस्माकं शं शान्त्यै उरूची विवर्तगमना पृथिव्यपि स्वधाभिः अन्नैः सहास्तु। बृहती महत्यै रोदसी द्यावापृथिव्यावपि शं भवताम्। अद्रिः पर्वतोऽपि नः अस्माकं शं शान्त्यै भवतु। शं शान्त्यै नः अस्माकं देवानां सुहवानि सुष्टुतयः सन्तु भवन्तु।।3।।

व्याकरण — धाता — दधातीति - 'डुधाञ् धारणपोषणयोः धातु से तृच् प्रत्यय। धर्ता + तृच् । उरूची — वैदिक प्रयोग है। भवतु — भू धातु लोट् लकार प्र0 पु0 ए0 व0। अद्रिः — अत्ति अद्यते वा 'अदभक्षणे' से 'अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन्' से क्रिन् प्रत्यय। देवानाम् — दिव् + अच् (ष0 ब0 व0)। सन्तु — अस् धातु लोट् लकार प्र0 पु0 ब0 व0।।3।।

टिप्पणी — 'धाता' शब्द को आचार्य सायण देवपरक मानते हैं जबकि महर्षि दयानन्द 'धाता' का अर्थ 'धारण करने वाला' करते हैं। 'धर्ता' का अर्थ सायण 'वरुण देव', महर्षिदयानन्द सरस्वती 'पुष्टि करने वाला' करते हैं। उरूची के अर्थ में सायण और महर्षि दयानन्द सरस्वती का एक विचार है और दोनों आचार्य पृथिवी अर्थ ही करते हैं। 'रोदसी' का अर्थ सायण 'द्यावापृथिवी', महर्षि दयानन्द 'प्रकाश और अन्तरिक्ष' अर्थ प्रस्तुत करते हैं। अद्रिः — सायण — पर्वतः, महर्षि दयानन्द सरस्वती — मेघः। इसी प्रकार 'देवानां' का अर्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती 'विदुषां' करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती के भावार्थ का अवलोकन करें — "ये मनुष्याः पोषकादिभ्य उपकारान् ग्रहीतुं विजानन्ति ते सर्वाणि सुखानि लभन्ते।" इस मन्त्र में धाता, धर्ता (वरुण), पृथिवी, रोदसी, अद्रि तथा देवस्तुतियों से शान्ति के लिये प्रार्थना की गयी है। प्रस्तुत मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है।।3।।

संहितापाठः

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम्।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सु॒कृता॑नि सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑।। ४।।

पदपाठः

शम्। नः॒ । अ॒ग्निः । ज्योतिः॑ऽअनीकः। अ॒स्तु। शम्। नः॒ । मि॒त्रावरु॑णौ। अ॒श्विना। शम् ।

शम् । नः॒ । सु॒ऽकृता॑म् । सु॒ऽकृता॑नि । स॒न्तु। शम् । नः । इ॒षि॒रः। अ॒भि । वा॒तु॒ वातः॑।।4।।

अन्वय — ज्योतिरनीकः अग्निः नः शम् अस्तु मित्रावरुणौ नः शं अश्विना शं सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु इषिरः वातः नः शम् अभि वातु।।4।।

शब्दार्थ — ज्योतिरनीकः = ज्योतिर्मुख (ज्वालामुख), अग्निः = अग्नि, नः = हमारे लिये, शम् अस्तु = शान्तिप्रद होवे, मित्रावरुणौ = मित्र और वरुण, नः = हमारे लिये, शं = शान्ति दें, अश्विना = अश्विनीकुमार शं = हमें शान्ति दें, सुकृतां = पुण्यात्माओं,

के सुकृतानि = पुण्य कर्म, नः = हमारे लिये, शं सन्तु = शान्तिप्रद होवें, इषिरः = गतिशील, वातः = हमारी, शं = शान्ति के लिये, अभि वातु = वहे।।2।।

हिन्दी अनुवाद — ज्योतिर्मुख (ज्वालामुखी) अग्नि हमारे लिये शान्तिप्रद हो। मित्र और वरुण हमें शान्ति दें, अश्विनीकुमार हमें शान्ति दें, पुण्यात्माओं के पुण्य कर्म हमारे लिये शान्तिप्रद हों, गतिशील पवन भी हमारी शान्ति के लिये बहे।।4।।

सायणभाष्य — ज्योतिरनीकः ज्योतिर्मुखः अग्निः नः अस्माकं शं शान्त्यै अस्तु भवतु। मित्रावरुणा मित्रावरुणावपि नः अस्माकं शं शान्त्यै भवताम्। अश्विनां अश्विनावपि शंभवताम्। पुण्यकर्मणां पुरुषाणां सुकृतानि पुण्यकर्माण्यपि नः अस्माकं शं शान्त्यै सन्तु भवन्तु। इषिरः गमनशीलोऽपि वातः वायुरपि नः अस्माकं सं शान्त्यै वातु।।4।।

व्याकरण — ज्योतिः - द्योतते इति 'द्युत दीप्तौ' धातु से 'द्युतेरिसिन्नादेश्च जः' इस वार्तिक से ज्योतिः शब्द बनता है। अश्विना — यह 'अश्विनौ' का वैदिक रूप है। प्रशस्ताः अश्वाः सन्ति ययोः। इनिः। सुकृताम् — सु + कृ + द्द क्विप् (तुगागम) (ष0 व0 व0)। सुकृतानि - सु + कृ + क्त। वातु — 'वा' धातु लोट् लकार प्र0 पु0 ए0 व0। वातः — वातीति — इस अर्थ में 'हसिमृग्रिण्' - इस औणादिक सूत्र से 'तन्' प्रत्यय।।4।।

टिप्पणी — 'ज्योतिरनीकः' की मीमांसा करते हुये महर्षि दयानन्द सरस्वती इस प्रकार लिखते हैं — 'ज्योतिः एवं अनीकं सैन्यमिव यस्य सः' आचार्य सायण 'ज्योतिर्मुखः' अर्थ करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती मित्रावरुणौ, अश्विना का अर्थ क्रमशः प्राण और उदान तथा व्यापक पदार्थ करते हैं जबकि सायण क्रमशः मित्र वरुण तथा अश्विनीकुमार अर्थ प्रस्तुत करते हैं। अश्विना वैदिक रूप है। इस मन्त्र में अग्नि, अश्विनीकुमार, पुण्यात्माओं के पुण्यकर्मों तथा पवन से शान्ति के लिये प्रार्थना की गयी है। प्रस्तुत मंत्र में त्रिष्टुप् छन्द है।।4।।

संहितापाठः

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।। ५।।

पदपाठः

शम् । नः । द्यावापृथिवी इति । पूर्वऽहूतौ । शम् । अन्तरिक्षम् । दृशये । नः अस्तु ।

शम् । नः । ओषधीः । वनिनः । भवन्तु । शम् । नः । रजसः । पतिः । अस्तु । जिष्णुः ।।5।।

अन्वय — पूर्वहूतौ द्यावापृथिवी नः दृशये अन्तरिक्षं नः शम् अस्तु ओषधीः वनिनः नः शं भवन्तु जिष्णुः रजसः पतिः नः शम् अस्तु।।5।।

शब्दार्थ — **पूर्वहूतौ** = प्रथम आह्वान में, **द्यावापृथिवी** = द्यावापृथिवी, **नः** = हमें शं, = शान्ति दें, **दृशये** = दर्शनार्थ, **अन्तरिक्षं** = अन्तरिक्षं, **न** = हमारे लिये, **शम् अस्तु** = शान्तिप्रद होवे, **ओषधीः** = ओषधियाँ, **वनिनः** = वृक्ष, **नः** = हमारे लिये, **शं भवन्तु** = शान्तिप्रद होवें, **जिष्णुः** = जयशील, **रजसः पतिः** = लोकपति इन्द्र, **नः** = हमें, **शम् अस्तु** = शान्ति दें।।5।।

हिन्दी अनुवाद — प्रथम आह्वान में द्यावापृथिवी हमारे लिये शान्ति दें, दर्शनार्थ अन्तरिक्ष हमारे लिये शान्तिप्रद हो, ओषधियाँ और वृक्ष हमें शान्ति दें, विजयशील लोकपति इन्द्र भी हमारे लिये शान्तिप्रद हो।।5।।

सायणभाष्य — नः अस्माकं शं शान्त्यै द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ पूर्वहूतौ प्रथमाह्वाने भवताम्। अन्तरिक्षम् अपि नः अस्माकं दृशये दर्शनार्थं शम् अस्तु। नः अस्माकं शं शान्त्यै ओषधीः ओषधयोऽपि भवन्तु। वनिनः वृक्षाश्च शं भवन्तु। जिष्णुः जयशीलः रजसः, लोकस्य पतिः इन्द्रोऽपि नः अस्माकं शं शान्त्यै अस्तु।।5।।

व्याकरण — द्यावापृथिवी — यहाँ द्वन्द्व समास है। पृथिवी — प्रथते इति इस अर्थ में 'प्रथ विस्तारे' धातु से 'प्रथेः षिवन् संप्रसारणं चं' इस औणादिक सूत्र से षिवन् प्रत्यय तथा सम्प्रसारण, षित्वात् ङीष। अन्तरिक्षम् — द्यावापृथिव्योरन्तरीक्ष्यते इति 'ईक्ष दर्शने' घञ् तथा छान्दस ह्रस्व। ओषधीः — ओषः प्लोषो दीप्तिर्वा धीयतेऽत्र - 'ओष' पूर्वक 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' धातु से 'कि' प्रत्यय। भवन्तु — भू धात् लोट् लकार प्र0 पु0 ब0 व0। जिष्णुः जयति इति — 'जि-जये धातु से 'ग्लाजिस्थश्च' आदि सूत्र से 'ग्स्नु' प्रत्यय।।5।।

टिप्पणी — महर्षि दयानन्द सरस्वती 'द्यावापृथिवी' का अर्थ 'विद्युत्-भूमि' करते हैं। आचार्य सायण जिष्णुः रजसः पतिः पद का अर्थ करते हुये रजसः पतिः का अर्थ इन्द्र तथा जिष्णु को उनके विशेषण के रूप में रखते हैं जबकि महर्षि दयानन्द 'रजसः' का अर्थ 'लोक जातस्य', 'पतिः' का अर्थ 'स्वामी' और 'जिष्णु' का अर्थ 'जयशीलः' करते हैं। पूर्वहूतौ की मीमांसा करते हुए वे इस प्रकार लिखते हैं 'पूर्वेषां हूतिः प्रशंसा यस्मिन् येन वा तस्याम्। प्रस्तुत मन्त्र में द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष औषधियाँ, वृक्ष तथा जिष्णु से शान्ति के लिये प्रार्थना की गयी है। इस मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है।।5।।

संहितापाठः

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः शुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोत।। ६।।

पदपाठः

शन् । नः । इन्द्रः । वसुऽभिः देवः । अस्तु । शम् । आदित्येभिः । वरुणः । सुऽशंसः। शम् । नः । रुद्रः । रुद्रेभिः । जलाषः । शम् । नः । त्वष्टा । ग्नाभिः । इह । शृणोत ।।6।।

अन्वय — वसुभिः इन्द्र देवः अस्तु सुशंसः वरुणः आदित्येभिः शं (अस्तु) जलाषः रुद्रः रुद्रेभिः नः शं त्वष्टा ग्नाभिः नः शं इह शृणोत।।6।।

शब्दार्थ — **वसुभिः** — वसुओं के साथ, **इन्द्रः देवः** = इन्द्रदेव, **नः** = हमें, **शम् अस्तु** = शान्ति दें, **सुशंसः** = सुन्दर स्तुतियों वाले, **वरुणः** = देव, **आदित्येभिः** = आदित्यों के साथ, **शम् अस्तु** = हमें शान्ति दें, **जलाषः** = गंगाधर या सुखरूप या जलाभिलाषी, **रुद्रः** = रुद्रदेव, **रुद्रेभिः** = रुद्रगण, के साथ, **नः शं** = हमें शान्ति दें, **त्वष्टा** = त्वष्टा देव, **ग्नाभिः** = देव स्त्रियों के साथ, **नः शम्** = हमें शान्ति दें, **इह** = इस यज्ञ में, **श्रृणोतु** = हमारे स्तोत्र को सुनें।।6।।

हिन्दी अनुवाद — प्रकाशशील इन्द्र वसु नामक देवताओं के साथ हमारे लिये शान्तिदायक होवें, शोभन स्तुतियों वाले वरुण आदित्यों के साथ शान्ति दें, सुख रूप या

जलाभिलाषी रुद्रदेव रुद्रों के साथ हमें शान्ति दें, त्वष्टा देव देवस्त्रियों के साथ हमें शान्ति दें, इस यज्ञ में हमारा स्तोत्र सुनें।।6।।

सायणभाष्य — देवः द्योतनादिगुणयुक्तः इद्रः वसुभिः देवैः सार्धं नः अस्माकं शं शान्त्यै भवतु सुशंसः शोभनस्तुतिः वरुणः देवः आदित्येभिः आदित्यैर्देवैः सार्धं शं शान्त्यै अस्तु भवतु। जलाषः रुद्रः दुःखद्रावको देवः रुद्रेभिः रुद्रैः सार्धं शं शान्त्यै नः स्माकं भवतु। इह यज्ञे त्वष्टा देवः ग्नाभिः देवपत्नीभिः सार्धं नः शं शान्त्यै भवतु। इह यज्ञे नः स्तोत्रं शृणोतु च।।6।।

व्याकरण — **वसुभिः** — वसन्तीति-वसवः। 'वस निवासे' धातु से 'शु स्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च' से 'उ' प्रत्यय, 'विश्वस्य वसुराटोः इति दीर्घो न असंज्ञात्वात्। **आदित्येभिः** — तृतीया के बहुवचन का वैदिक रूप। अदितेरपत्यं पुमान् — 'अदिति + ण्य' यहाँ 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' से 'ण्य' प्रत्यय। **सुशंसः** — शोभनं शंसः — यस्य सः। शंसः - शंस् + अच्। रुद्रः - रोदयति असुरान् - 'रुदिर् अश्रुविमोचन' धातु से 'रोदेर्णिलुक् च' से रक् प्रत्यय तथा 'णिच्' का लोप। रुद्रेभिः — रुद्र के तृतीया का वहुवचन (वैदिक रूप) **शृणोतु** — 'श्रु' धातु लोट्लकार प्र० पु० ए० व० ।।6।।

टिप्पणी — महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार होगा - "(शम्) (नः) (इन्द्रः) विद्युत्सूर्यो वा (वसुभिः) पृथिव्यादिभिस्सह (देवः) दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्तः (अस्तु) (शम्) (आदित्येभिः) संवसरस्य मासैः (वरुणः) जलसमुदायः (सुशंसः) प्रशस्तप्रशंसनीयः (शम्) (नः) (रुद्रः) परमात्मा जीवो वा (रुद्रेभिः) जीवैः प्राणैर्वा (जलाषः) दुःखनिवारकः (शम्) (नः) (त्वष्टा) सर्व स्तुविच्छेदकोऽग्निरिव परीक्षको विद्वान् (ग्नाभिः) वाग्भिः। ग्नेति वाङ्नाम। निघं० 1।11 (इह) अस्मिन् संसारे (शृणोत)।" इस मन्त्र में इन्द्र, वरुण, रुद्र और त्वष्टा से शान्ति के लिए प्रार्थना की गयी है। जलाषः शब्द का अर्थ गंगाघर सुखरूप या जलाभिलाषी या दुःखनिवारक किया गया है। प्रस्तुत मन्त्र में निचृत् त्रिष्टुप् छन्द है।।6।।

संहितापाठः

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु शन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व १ः शम्वस्तु वेदिः।। ७।।

पदपाठः

शम् । नः । सोमः । भवतु । ब्रह्म । शम् । नः शम् । नः । ग्रावाणः । शम् ॐ इति।

सन्तु । यज्ञाः । शम् । नः । स्वरूणाम् । मितयः । भवन्तु । शम् । नः । प्रऽस्वः । शम् । ॐ इति। अस्तु । वेदिः ।।7।।

अन्वय — सोमः नः शं भवतु ब्रह्म नः शं ग्रावाणः नः शं यज्ञाः शमु सन्तु स्वरूणां मितयः नः शं भवन्तु प्रस्वः नः शं वेदिः शमु अस्तु।।

शब्दार्थ — सोमः =सोम, नः = हमारे लिये, शं भवतु = शान्तिप्रद होवें, ब्रह्म = स्तोत्र, नः शं = हमें शान्ति दें, ग्रावाण = पत्थर, नः शं = हमें शान्ति दें, यज्ञाः = यज्ञ, शमु सन्तू = शान्तिप्रद होवें, स्वरूणां = यूपों के, मितयः = माप, नः = हमारे लिये, भवन्तु = शान्तिप्रद होवें, प्रस्वः = ओषधियाँ, नः शं = हमें शान्ति दें, वेदिः = वेदी, शमु अस्तु = हमारे लिए शान्तिप्रद होवें।।7।।

हिन्दी अनुवाद — सोम हमारे लिये शान्तिप्रद होवें, स्तोत्र हमें शान्ति दें, (सोम रस के निकलने के साधनभूत) पत्थर हमें शान्ति दें, यज्ञ हमें शान्ति दे, यज्ञ स्तम्भों का माप हमारे लिये शान्तिप्रद होवे, औषधियाँ हमें शान्ति दें, वेदी हमें शान्ति दे।।7।।

सायणभाष्य — नः अस्माकं शं शान्त्यै सोमः भवतु। ब्रह्म स्तोत्रमपि नः अस्माकं शं शान्त्यै भवतु। ग्रावाणः अभिषवसाधनभूताः पाषाणा अपि नः अस्माकं शं शान्त्यै भवन्तु। यज्ञा च नः शमु शान्त्या एव सन्तु। स्वरूणां यूपानां मितयः उन्मानान्यपि नः अस्माकं शं शान्त्यै भवन्तु। प्रस्वः ओषधयोऽपि नः अस्माकं शं शान्त्यै भवन्तु। वेदि अपि नः शमु शान्त्या एव अस्तु।।7।।

व्याकरण — ब्रह्म — बृंहति इति 'बृहि वृद्धौ' धातु से 'बृंहेर्नोऽच्च' इस औणादिक सूत्र से मनिन् प्रत्यय तथा अत्। ग्रावाणः — गिरति गृणाति वा 'गृ निगरणे शब्दे वा' धातु से 'अन्येभ्योऽपि—' से वनिप् प्रत्यय, प्र० ब० व०। यज्ञाः — यज् + नङ् प्र० व० । वेदिः — विद्यते शोधनेन ज्ञायते, विचार्यते प्राप्यते वा — 'तृ

पिषिरुहिवृत्ति-' इति प्रत्यय अथवा - वेदयति, वेद्यते वा 'विद निवासादौ' चुरादिः। 'अच इः'।।7।।

टिप्पणी — प्रस्तुत मन्त्र में आये हुये सोमः, ब्रह्म, ग्रावाणः पदों का अर्थ महर्षि दयानन्द ने क्रमशः चन्द्रः, धनम् (अन्नम्) तथा 'मेघाः' किया है जबकि आचार्य सायण ने इनका अर्थ सोम, स्तोत्र तथा पाषाण किया है। प्रस्वः की व्युत्पत्ति महर्षि दयानन्द इस प्रकार करते हैं — 'याः प्रसूयन्ते ताः ओषधयः।' इस मन्त्र में सोम ब्रह्म, पाषाण, यज्ञ, यज्ञस्तम्भ के माप, ओषधियों तथा वेदी से शान्ति के लिये प्रार्थना की गई है। प्रस्तुत मन्त्र में विराट् त्रिष्टुप् छन्द है।।7।।

मण्डूक-सूक्तम् (पर्जन्यसूक्तं वा)

(ऋ० सं०, ७.१०३)

(ऋषिः—वसिष्ठः, देवता—मण्डूकाः (पर्जन्यो वा), प्रथमा अनुष्टुप्, २—१० त्रिष्टुप्)

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्रमण्डूका अवादिषुः।। १।।

पादपाठः

संवत्सरम्। शशयानाः। ब्राह्मणाः। व्रतऽचारिणः। वाचम्।
पर्जन्यऽजिन्विताम्। प्र। मण्डूका। अवादिषुः।। १।।

सायण-भाष्यम्—व्रतचारिणः व्रतं संवत्सरसत्रात्मकं कर्माचरन्तः ब्राह्मणाः। लुप्तोपममेतत्। एवम्भूता ब्राह्मणा इव संवत्सरं शरत्प्रभृति आ वर्षतोरिकं संवत्सरं शशयाना, शिश्याना वर्षणार्थं तपश्चरन्त इव बिल एव सन्त एते मण्डूकाः पर्जन्य-जिन्वितां पर्जन्येन प्रीतां यया वाचा पर्जन्यः प्रीतो भवति तादृशीं वाचं प्र अवादिषुः प्रवदन्ति।। १।।

अन्वयः—संवत्सरं शशयाना व्रतचारिणः ब्राह्मणा मण्डूकाः पर्जन्यजिन्वितां वाचम् प्रा वादिषुः।

शब्दार्थ—संवत्सरम् = वर्ष भर तक, शशयानाः = सोये रहने वाले, व्रत-चारिणः = व्रत-पालन करने वाले (—मौन रहने वाले), ब्राह्मणा = ये ब्राह्मण, मण्डूकाः = मण्डूकगण, पर्जन्यजिन्विताम् = पर्जन्य द्वारा जगाई गई, वाचम् = वाणी को, अवादिषुः = उच्चारण करते हैं।

हिन्दी—एक वर्ष तक सोये रहने वाले तथा (मौन) व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण

(अथवा ब्राह्मणों की भाँति) मण्डूक पर्जन्यदेव द्वारा उनमें जागृत की गई वाणी का उच्च स्वर से उच्चारण कर रहे हैं।

Eng. Trans.—The frogs having lain for a year like Brahmanas practising a vow, have uttered forth their voice roused by Parjanya.

टिप्पणियाँ

१. वेंकटमाधव ने 'व्रतचारिणः' का 'अनश्नन्तः' (भोजन न करते हुए) तथा 'पर्जन्यजिन्विताम्' का 'पर्जन्यप्रीताम्' (मेघों को प्रसन्न करने वाली) अर्थ किया है।

२. इस ऋचा का उल्लेख यास्क ने निरुक्त में भी किया है—'ब्राह्मणा ब्रुवाणाः। अपि वोपमार्थे स्यात्। ब्राह्मणा इव व्रतचारिण इति।' ब्राह्मणों से मण्डूकों की समानता प्रदर्शित की गई है—इससे अन्य भाष्यकार भी सहमत हैं। निरुक्त के दशम अध्याय में यास्क का कथन है कि वर्षा की कामना से प्रेरित वसिष्ठ ने पर्जन्य की स्तुति की, मण्डूकों ने उसका अनुमोदन किया—'वसिष्ठो वर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव, तं मण्डूका अन्वमोदन्त, स मण्डूकाननुमोदमानान् दृष्ट्वा तुष्टाव (निरुक्त ९—६)। इसी प्रसंग में उन्होंने 'मण्डूक' के विभिन्न निर्वचन भी दिए हैं, जिनका उल्लेख रोचक सिद्ध होगा—'मण्डूका मज्जूका मज्जनान्मदतेर्वा मोदतिकर्मणो मन्दतेर्वा तृप्तिकर्मणो मण्डयतेरिति वैयाकरणा मण्ड एषामोक इति वा। मण्डो मदेर्वा तेषामेषा भवति (नि० ९—५)।

३. **शशयाना**—'शीङ्' (स्व०) + शानच्, आत्मनेपद, प्रथमा बहुवचन।

४. अवादिषुः = 'वद' धातु, लङ्, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

दिव्या आपो अभि यदेनमायन् दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति॥ २॥

पदपाठः

दिव्याः। आपः। अभि। यत्। एनम्। आयन्। दृतिम्। न। शुष्कम्। सरसी इति। शयानम्। गवाम्। अह। न। मायुः। वत्सिनीनाम्। मण्डूकानाम्। वग्नुः। अत्र। सम्। एति।। २।।

सायण-भाष्यम्—दिव्याः दिविभवाः आपः दृतिं न दृतिमिव शुष्कं नीरसं सरसी। महत्सरः सरसी। गौरादिलक्षणो ङीष्। सरस्याम्। 'सुपां सुलुक0 इति सप्तम्या लुक्।' 'ईदूतौ च सप्तमयर्थे' इति प्रगृह्यसंज्ञा। महति सरसि निर्जले घर्मकाले शयानं निवसन्तं एवं मण्डूकगणं यत् यदा आयन् अभिगच्छन्ति तदा अत्र अस्मिन् वर्षणे पर्जन्ये वा सति वत्सिनीनां वत्सयुक्तानां गवां न मायुः गवां शब्द इव मण्डूकानां वग्नुः शब्दः समेति संगच्छते। यथा वत्सैः संगताषु गोषु महान् घोषो जायते तद्वद् वृष्टे पर्जन्ये महान् कलकलशब्दो जायत इत्यर्थः। अह इति पूरकः।। २।।

अन्वयः—यत् सारसी शयानम् एनम्, न शुष्कं दृतिम् दिव्या आपः अभ्यायन्, वत्सिनीनां गवाम् न मायुः मण्डूकानां वग्नुः अत्र समेति।

शब्दार्थः—यत् = यदा (जब), सरसी = तालाब में, शयानम् = सोये हुए, शुष्कम् = जल रहित, दृतिम् = चमड़े की थैली, दिव्या आपः = द्युलोक की जल धाराएँ, अभ्यायन् = आईं, वत्सिनीनाम् = सवत्सा, गवाम् = गायों के, मायुः शब्द (रँभाने की आवाज), न = के समान, मण्डूकानां = मण्डूकों की, वग्नुः = टरटराहट, अत्र, समेति = सम्मिलित हो गई है।

हिन्दी—जिस समय दिव्य जलधाराएँ जलाशय में सूखे चमड़े के थैले की भाँति सूखे पड़े हुए (मेंढक) तक पहुँचती हैं, उसी क्षण मेढकों का कोलाहल (टर्राहट) बछड़ों सहित गायों के रँभाने के स्वर में मिल जाता है।

Eng. Trans.—When the heavenly waters came upon him lying like a dry leather bag in a lake, then the sound of the frogs unites like the lowing of cows accompanied by calves.

टिप्पणियाँ

१. वेंकटमाधव के भाष्य में कोई विशेष बात नहीं है।

२. शुष्कं दृतिम् = चमड़े की वह सूखी थैली जो द्रव पदार्थ के अभाव में सिमट गई हो—इसी थैली की तरह मेढक सूखे पड़े रहते हैं। **शयानम्**—उपमान और उपमेय के मध्य यही साधारण धर्म है। 'वत्सिनीनाम्' साभिप्राय विशेषण है। (चरागाह में लौटकर) अपने बछड़े से मिलने के बाद का गायों के रँभाने का स्वर—यही उपमान यहाँ अभिप्रेत है।

३. वग्नु = 'वच' + 'नु' प्रत्यय। मायुम् = 'मा' (रँभाना) + 'यु' प्रत्यय। **आयन्**

= 'इण्' (गतौ), लङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन। अत्रा = छन्दः पूर्ति के लिए आकारान्त। **सरसी** = (सरस्याम्), 'सुपां सुलूक्0' से सप्तमी का लुक् (लोप)। प्रगृह्यसंज्ञा (ईकारान्त होने के कारण)। 'अह पादपूर्ति के निमित्त प्रयुक्त।

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम्।
अखखलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति।। ३।।

पदपाठः

यत्। ईम्। एनान्। उशतः। अभि। अवर्षीत्। तृष्याऽवतः। प्रावृषि। आऽगतायाम्। अखखलीकृत्य। पितरम्। न। पुत्रः। अन्यम्। उप। वदन्तम्। एति।। ३।।

सायण-भाष्यम्—उशतः कामयमानान् तृष्यावतः तृष्णावतः एनान् मण्डूकान् प्रावृषि वर्षर्तौ आगतायाम् आगते सति यत् यदा अभ्यवर्षीत् पर्जन्यो जलैरभिषिञ्चति। ईम् इति पूरणः। तदानीम् अखखलीकृत्य। अखखल इति शब्दानुकरणम्। अखखल-शब्दं कृत्वा पुत्रः पितरं न पितरमिव अन्यः मण्डूकः वदन्तं शब्दयन्तम् अन्य मण्डूकम् उप एति प्राप्नोति।।

अन्वयः—प्रावृषि आगतायाम् एनान्—उशतः तृष्यावतः यत् ईम् अभ्यवर्षीत्, अखखलीकृत्य पुत्रः पितरं न अन्यः वदन्तम् अन्यम् उप एति।

शब्दार्थ—प्रावृषि = वर्षा ऋतु में, उशतः = कामना करते हुओं को, तृष्यावतः = पिपासा से व्याकुल, अभ्यवर्षीत् = वर्षा की, अखखलीकृत्य = आनन्द-सूचक ध्वनि करके, वदन्तम् = (वैसी ही) ध्वनि करते हुए को, उप एति = समीप जाता है।

हिन्दी—वर्षा ऋतु आने पर जब (पर्जन्य ने) इन जलाकांक्षी और पिपासाकुल (मेंढकों पर) वर्षा की, उस समय पुत्र जिस प्रकार (अभिवादन के लिए) पिता के समीप जाता है, उसी प्रकार उनमें से एक (मेंढक) आनन्द सूचक ध्वनि करके (वैसी ही) ध्वनि करने वाले दूसरे के समीप (अभिवादन के लिए) गया है ।

Eng. Trans.—When he has rained upon them the eager, the thirsty, the rainy season having come, one with a croak of joy approaches the other while he speaks, as a son (approaches) his father.

टिप्पणियाँ

१. पदपाठ में आर्षत्व—पदपाठ में 'अभि' के निघात एवं 'अवर्षीत्' को उदात्तयुक्त दिखाकर दोनों की अवग्रहयुक्त सामासिकता दिखाना अपेक्षित था, क्योंकि यह क्रिया उस उपवाक्य से सम्बद्ध है, जो 'यत्' से आरम्भ हुआ है। तथापि पदपाठ में इस प्रकार का आर्षत्व अन्यत्र भी पाया जाता है।

२. अखखलीकृत्य = शब्दानुकरण। उशतः = 'वश' धातु से, आत्मनेपद, बहुवचन। 'ईम्' निपात पाद-पूर्ति के निमित्त है।

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गेयदमन्दिषाताम्।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम्॥ ४॥

पदपाठः

अन्यः। अन्यम्। अनु। गृभ्णाति। एनोः। अपाम्। प्रऽसर्गे। यत् अमन्दिषाताम्। मण्डूकः। यत्। अभिऽवृष्टः कनिस्कन्। पृश्निः। सम्ऽपृङ्क्ते। हरितेन। वाचम्।। ४।।

सायण-भाष्यम्—एनोः एनयोर्द्वयोः मण्डूकयोः अन्यः मण्डूकः अन्यं मण्डूकमनुगम्य गृभ्णाति गृह्णाति। अपां उदकानां प्रसर्गे प्रसर्जने वर्षणे सति यत् यदा अमन्दिषाताम् दृष्टावभूताम्, यत् यदा च अभिवृष्टः पर्जन्येनाभिषिक्तः कनिष्कन्। स्कन्दयतेर्यङ्लुगन्तस्य रूपम्। भृशं स्कन्दन्नुत्प्लवं कुर्वन् पृश्निः पृश्निवर्णः मण्डूकः हरितेन हरितवर्णेनान्येन मण्डूकेन वाचं संपृङ्क्ते संयोजयति। उभावप्येकविधं शब्दं कुर्वोते। तदानीमन्योऽन्यमनुगृभ्णातीत्यन्वयः।। ४।।

अन्वयः—अपाँ प्रसर्गे यत् अमन्दिषाताम्, यत् अभिवृष्टः मण्डूकः कनिष्कन् (आस्ते), यत् पृश्निः हरितेन वाचं सम्पृङ्क्ते (तदा) एनोः अन्यः अन्यम् अनुगृभ्णाति।।

शब्दार्थः—अपां प्रसर्गे = भारी जलवर्षा होने पर, अमन्दिषाताम् = दोनों हर्षविभोर हो गए, अभिवृष्टः = वर्षा से भीगा हुआ, कनिष्कन् = कूदते हुए, पृश्निः = पीले रंग का,

हरितेन = हरे रंग के साथ, वाचं संपृङ्क्ते = ध्वनि मिलाने लगा, अनुगृभ्णाति = बधाई दे रहे हों।

हिन्दी—वेगवती जल-वर्षा होने पर जब दोनों (मेंढक) हर्ष विभोर हो उठे, तो वर्षा से भीगा हुआ पीतवर्णो मण्डूक कूदते हुए हरे रंग के मेढक के साथ अपनी ध्वनि मिलाने लगा—(उस समय ऐसा लगा, जैसे) उनमें से एक दूसरे को बधाई दे रहा हो।

Eng. Trans.—One of the two greets the other when they have revelled in the discharge of the waters. When the frog, rained upon, leaps about, the speckled one mingles his voice with (that of) the yellow one.

टिप्पणियाँ

१. वेंकटमाधव के भाष्य में कोई विशेष बात नहीं है।

२. अमन्दिषाताम् = मन्द (प्रसन्न होना) धातु, लुङ् लकार, आत्मनेपद, प्रथमपुरुष द्विवचन।

कनिष्कन् = 'स्कन्द' (कूदना) धातु, प्रथम पुरुष एकवचन यङ्लुगन्तरूप।

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु॥ ५॥

पदपाठः

यत्। एषाम्। अन्यः। अन्यस्य। वाचम्। शाक्तस्यऽइव। वदति। शिक्षमाणः। सर्वम्। तत्। एषाम्। समृधाऽइव। पर्व। यत्। सुऽवाचः। वदथन। अधि। अप्ऽसु।।

सायण-भाष्यम्—हे मण्डूकाः यत् यदा एषां युष्माकं मध्ये अन्यः मण्डूकः अन्यस्य मण्डूकस्य वाचं वदति अनुवदति अनुकरोति शिक्षमाणः शिक्ष्यमाणः शिष्यः शाक्तस्येव। शक्तिमतः शिक्षकस्य वाचं यथानुवदति तद्वत्। यत् यदा च सुवाचः शोभनवाचो यूयं सर्वे अप्सु वृष्टेषूदकेषु अधि उपरिप्लवन्तः वदथन वदत शब्दं कुरुत। तत् तदा एषां युष्माकं सर्वं पर्व परुष्मच्छरीरं समृधेव समृद्धमेवाविकलावयवमेव भवति।

इव शब्दोऽवधारणे। घर्मकाले मृद्भावमापन्ना मण्डूकाः पुनर्वर्षणे सत्यविकलाङ्गाः प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः।

अन्वयः—शिक्षमाणः शाक्तस्य (वाचं यथा वदति) इव, यत् एषाम् अन्यः अन्यस्य वाचं वदति, एषां तत्सर्वं समृधेव पर्व, यत् अप्सु अधिवदथन (तत्) सुवाचः।

शब्दार्थ—शिक्षमाणः = शिष्य, शाक्तस्य = गुरु के, वाचं वदति = दोहराता है। अप्सु = जल में, अधिवदथन = बोलते हो, समृधेव पर्व = आह्निक की पूर्णता के समान।

हिन्दी—जैसे शिष्य अपने शिक्षक की बात को दोहराता है, वैसे ही उन (मेढकों) में से एक दूसरे की बात को दोहराता है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे आह्निक (एक दिन का पाठ) पूर्ण हुआ हो (अथवा सभी ओर से समृद्ध होने के कारण कोई यज्ञकर्म)। (हे मण्डूकों!) जब तुम जल के अन्दर बोलते हो, तुम्हारी वाणी सुरम्य प्रतीत होती है।

Eng. Trans.—When one of them repeats the speech of the other, as the learner that of his teacher; It is like a chapter finished by them......Beautiful is your talk when you speak in the waters.

टिप्पणियाँ

१. **समृधेव पर्व—वेंकटमाधव**—'समृद्धिमिव पर्वाङ्गानामुदकाप्यायितम्। पश्चिमी विद्वानों ने एक स्वर से इसे 'पाठ की पूर्णता' के रूप में अनूदित किया है, क्योंकि द्वितीय पाद में शिक्षक और शिक्षार्थी की उपमा आई है। कुछ भारतीय भाष्यकार 'पर्व' का अर्थ 'यज्ञकर्म का इष्टकाल' मानने के पक्ष में हैं। लक्षण से 'समृधेव पर्व' का अर्थ होता है— 'सभी ओर समृद्ध होने के कारण जैसे कोई यज्ञकर्म।' यज्ञकर्म के 'इष्टकाल' के अर्थ में 'पर्व' शब्द ऋग्वेद में अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है—'भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम्'—(१.९.४४)। इन भाष्यकारों की युक्ति यह है कि मण्डूकों के व्यवहार पर यज्ञकर्म का आरोप ही प्रकृत सूक्त में प्रधान है; इसलिए उनका सम्पूर्ण कार्य सर्वाङ्गसुन्दर यज्ञकर्म की तरह शोभायमान है। अतः 'पर्व' शब्द के मुख्य अर्थ 'विशिष्ट यज्ञकाल' को यहाँ बाधित मानकर लक्षणा की सहायता से उसे 'पर्वकालीन यज्ञकर्म' मान लेना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

२. 'शाक्त' तथा 'शिक्षमाण' दोषों ही 'शक्' धातु से निष्पन्न हुए हैं।

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम्।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः।। ६।।

पदपाठः

गोऽमायुः। एकः। अजऽमायुः। एकः। पृश्निः। एकः। हरितः। एकः। एषाम्। समानम्। नाम। विभ्रतः। विऽरूपाः। पुरूऽत्ता। वाचम्। पिपिशुः। वदन्तः।। ६।।

सायण-भाष्यम्—एषां मण्डूकानां मध्ये एकः मण्डूकः गोमायुः गोर्मायुरिव मायुः शब्दो यस्य तादृशो भवति। एकः अन्यो मण्डूकः अजमायुः अजस्य मायुरिव मायुर्यस्य तादृशो भवति। एकः पृश्निः पृश्निवर्णः एकः अपरः हरितःहरितवर्ण एवं विरूपाः नानारूपाः अपि समानम् एकं मण्डूका इति नाम विभ्रतः धारयन्तः पुरुत्रा वहुषु देशेषु वाचं वदन्तः शब्दं कुर्वन्तः पिपिशुः अवयवी भवन्ति प्रादुर्भवन्ति। 'पिश अवयवे।' पुरुशब्दात् 'देवमनुष्य0' इत्यादिनात्राप्रत्ययः।

अन्वयः—एषाम् एकः गोमायुः, एकः अजमायुः, एकः पृश्निः एकः हरितः। (एवं) विरूपाः (अपि) समानं नाम विभ्रतः पुरुत्रा वाचं वदन्तः पिपिशुः।

शब्दार्थ—एषाम् = इनके, गोमायुः = गाय की भाँति रँभाने की ध्वनि वाला, अजमायुः = वकरे के समान मिमियाने वाला, पृश्निः = अनेक रंगों वाला, हरितः = हरे रंगों वाला, विरूपा = भिन्न स्वरूप वाले, पुरुत्राः = बहुत स्थानों पर, वाचम् = वाणी को। वदन्तः = वोलते हुए, पिपिशुः = पिपिशुः = मिश्रित कर देते हैं, या उत्पन्न होते हैं।

हिन्दी—इन (मेढकों) में से एक ही आवाज गाय के रँभाने की तरह तो दूसरे की वकरे के समान मिमियाने वाली है। एक हरे रंग का है तो दूसरा अनेक रंगों से विभूषित। एक ही नाम धारण करने वाले परन्तु स्वरूप से परस्पर भिन्न ये मण्डूक अलग-अलग बोलते हुये (अपनी ध्वनि को परस्पर मिला) देते हैं।

Eng. Trans.—One lows like a cow, one bleats like a goat; one is speckled, one of them is yellow. Bearing a common name, they have different colours. In many ways they adorn their voice in speaking.

टिप्पणियाँ

१. पिपिशुः = सायण ने इसे 'पिश्' (अवयवे) धातु के लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप मानकर अर्थ किया है—'अवयव बन जाते हैं अर्थात् उत्पन्न होते हैं।' वेंकटमाधव ने 'मिश्रयन्ति' अर्थ किया है, जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं। हरि दामोदर वेलणकर ने 'वाणी को अलंकृत करते हैं', यह अर्थ किया है।

शेष मन्त्र के अर्थ के विषय में मतभेद नहीं है।

२. गोमायुः = गोः मायुः इव मायुः शब्दः यस्य तादृशः।

३. अजमायुः = अजस्य मायुः इव मायुः यस्य तादृशः।

४.पुरुत्राः = अनेक स्थानों पर।

ब्राह्मणासों अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।
संवत्सरस्य तदहः परिष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव॥ ७॥

पदपाठः

ब्राह्मणासः। अतिऽरात्रे। न। सोमे। सरः। न। पूर्णम्। अभितः। वदन्तः। संवत्सरस्य। तत्। अहरिति। परि। स्थ। यत्। मण्डूकाः प्रावृषीणम्। बभूव।। ७।।

सायण-भाष्यम्—रात्रिमतीत्य वर्तत इत्यतिरात्रः। अतिरात्रे न सोमे। यथा अतिरात्राख्ये सोमयागे ब्राह्मणासः ब्राह्मणाः रात्रौ स्तुतशस्त्राणि शंसन्ति, हे मण्डूकाः। द्वितीय न शब्दः सम्प्रत्यर्थे। न सम्प्रति पूर्णं सरः अभितः सर्वतः वदन्तः रात्रौ शब्दं कुर्वाणा यूयं तदहः तद्दिनं परिष्ठ परितः सर्वतो भवथ। यत् अहः प्रावृषीणं प्रावृषेण्यं प्रावृषि भवं बभूव तस्मिन्नहनि सर्वतो वर्तमाना भवथ इत्यर्थः।

अन्वय—अतिरात्रे न सोमे ब्राह्मणासः पूर्ण सरः अभितः वदन्तः (हे) मण्डूकाः संवत्सरस्य (यत्) अहः परिष्ठ तदहः प्रावृषीणं बभूव।

शब्दार्थः—अतिरात्रे = अतिरात्र संज्ञक सोम याग में, पूर्ण सर = पूर्ण जलाशय के, अभितः = चारों ओर, संवत्सरस्य = वर्ष के, परिष्ठ = एकत्र होते हो, प्रावृषीणम् = वर्षा का (दिन)।

हिन्दी—अतिरात्र नामक सोमायाग में पूरी तरह भरे हुए सोमपात्र के चारों ओर मन्त्र-पाठ करने वाले ब्राह्मणों की तरह (इस जल)—पूर्ण जलाशय के चारों ओर टर्र-टर्र करने वाले हे मेंढकों! तुम जिस दिन एकत्र होकर उत्सव मनाते हो, वर्ष का वह दिन वर्षा के आगमन का हो जाता है।

Eng. Trans.—Like Brahmins at the over-night Soma-Sacrifice speaking around as it were a full lake, ye celebrate that day of the year which, O Frogs, has begun the rains.

टिप्पणियाँ

१. **अतिरात्र**—एक प्रकार का सोमयाग, जो एक दिन एवं रात भर चलता रहता है। उपमा की संगतियाँ हैं—जैसे रात्रि के समय भी उस यज्ञ में वाधा नहीं पैदा होती उसी तरह मेंढकों की टर्र-टर्र ध्वनि रात में भी निर्बाध रूप से चलती रहती है। 'न' उपमावाचक है। सायण के अनुसार द्वितीय 'न' सम्प्रति के अर्थ में है। 'सरः' शब्द श्लिष्ट है—'सोम से भरा हुआ पात्र' इसका यह अर्थ ऋग्वेद में बहुधा उपलब्ध है (देखिये—मांश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व—ऋ० सं० ९.९७.५२ तथा 'अयं सरांसि धावति'—ऋ० से० ९.५४.२)। सोम से भरे हुए पात्र के चारों ओर बैठकर दिन-रात वेदमन्त्रों का पाठ करने वाले ब्राह्मणों के साथ यहाँ उन मण्डूकों की तुलना की गई है, जो वर्षा के जल से भरे हुये तालाब के पास ही रहकर दिन-रात 'टर्र-टर्र' करते रहते हैं।

२. वेंकटमाधव के अनुसार 'सरः' शब्द स्तोमवाचक है—'सरशब्दः स्तोम-वचनः।'

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित्॥ ८॥

पसीना

पदपाठः

ब्राह्मणासः। सोमिनः। वाचम्। अक्रत। ब्रह्म। कृण्वन्तः। परिवत्सरीणम्। अध्वर्यवः। घर्मिणः। सिस्विदानाः। आविः। भवन्ति। गुह्याः। न। के। चित्।। ८।।

सायण-भाष्यम्—सोमिनः सोमयुक्ताः परिवत्सरीणं सांवत्सरिकं गवामयनिकं व्रह्म स्तुतशस्त्रात्मकं कृण्वन्तः कुर्वन्तः व्राह्मणासः। लुप्तोपममेतत्। व्राह्मणा इव वाचम् शव्दम् अक्रत अकृषतेमे मण्डूकाः। अपि च घर्मिणः घर्मेण प्रवर्ग्येण चरन्तः अध्वर्यवः अध्वरस्य नेतार ऋत्विज इव सिष्विदाना स्विन्नगात्राः गुह्याः घर्मकाले विले निगूढाः केचित् केचन मण्डूकाः न सम्प्रति वृष्टौ सत्याम् आविर्भवन्ति जायन्ते।। ८।।

अन्वयः—परिवत्सरीणम् व्रह्म कृण्वन्तः सोमिनः व्राह्मणासः वाचम् अक्रत। घर्मिणः सिष्विदाना अध्वर्यवः आविर्भवन्ति, केचित् (अपि) न गुह्याः (सन्ति)।

शब्दार्थ—परिवत्सरीणम् = प्रतिवार्षिक, व्रह्म = स्तोत्र-पाठ, कृण्वन्तः = करते हुए, सोमिनः = सोमयुक्त या सोमयाजी, व्राह्मणासः = व्राह्मणों ने, वाचम् अक्रत = अपनी वाणी (स्तोत्ररूपा) उच्चारण किया हैं। घर्मिणः = गर्मी से सन्तप्त, 'सिष्विदानाः' = पसीने से भीगे हुए, अध्वर्यवः = अध्वर्युगण; आविर्भवन्ति = प्रकट हो रहे हैं। गुह्याः = छिपे हुए, न = नहीं है।

हिन्दी—(अपना) प्रतिवार्षिक स्तोत्रपाठ करने वाले सोमयाजी व्राह्मणों ने अपने स्तोत्र का उच्चारण किया हैं। गर्मी से सन्तप्त, और पसीने से भीगे हुए सभी अध्वर्यु प्रकट हो रहे हैं—वाहर निकल रहे हैं—(अव कोई भी) उनमें से अन्दर छिपा हुआ नहीं है।

Eng. Trans.—Soma-pressing Brahmins, they have raised their voice, offering their yearly prayer. Adhvaryu priests, heated, sweating, they appear; none of them are hidden.

टिप्पणियाँ

१. सातवीं ऋचा की उपमा को ही यहाँ श्लिष्ट रूपक का रूप प्रदान किया गया है। 'घर्मिणः' तथा 'सिष्विदानाः' दोनों शब्द श्लिष्ट हैं। मण्डूकों के सन्दर्भ में 'घर्मिणः' का अर्थ है 'धूप से सन्तप्त' और अध्वर्युओं के साथ है—'अग्नि की उष्णता से सन्तप्त एवं घर्म नामक हव्य को अपने पास रखने वाले।' इसी प्रकार मण्डूकों के सन्दर्भ में 'सिष्विदानाः' का अर्थ है 'वर्षा के पानी से तर।' 'सोमिन इत्यौपमिकम्' कहकर वेंकटमाधव भी इससे सहमत प्रतीत होते हैं।

२. 'अध्वर्यु' याग के चार ऋत्विजों में से है—उसका सम्बन्ध यजुर्वेद से है और याग की शरीर-रचना का सम्पादन उसी के द्वारा होता है। यास्क का कथन है—'अध्वर्युः'। अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता वा।'

३. अक्रत = 'कृ' धातु, लङ् लकार, आत्मनेपद, प्रथम पुरुष एकवचन।
सिष्विदानः = 'स्विद्' (स्वेदे) धातु से निष्पन्न।

देवहिंतिं जुगुपुर्द्वादशस्यं ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम्।। ८।।

पदपाठः

देवऽहिंतिम्। जुगुपुः। द्वादशस्यं। ऋतुम्। नरः न। प्र। मिनन्ति। एते।
संवत्सरे। प्रावृषि। आऽगतायाम्। तप्ताः। घर्माः। अश्नुवते। विऽसर्गम्।। ९।।

सायण-भाष्यम्—नरः नेतारः एते मण्डूकाः देवहितिं देवैः कृतं विधानं अस्यर्तोरयं धर्म इत्येवं रूपं जुगुपुः गोपायन्ति। काले काले रक्षन्ति। अतएव द्वादशस्य द्वादशमासात्मकस्य संवत्सरस्य ऋतु तं तं वसन्तादिकं न प्रमिनन्ति न हिंसन्ति। पर्जन्यस्तुतेरनुमोदनेन तत्तत्काले वृष्टिहेतवो भवन्तीत्यर्थः। संवत्सरे सम्पूर्णे प्रावृषि वर्षतौं आगतायाम् आगते सति घर्माः पूर्व घर्मकाले वर्तमानाः तप्ताः तापेन पीडिताः सम्प्रति विसर्गं विसर्जनं विलान्मोचनम् अश्नुवते प्राप्नुवन्ति।।

अन्वय—नरः देवहितिं जुगुपुः द्वादशस्य ऋतु एते न प्रमिनन्ति। संवत्सरे प्रावृषि आगतायाम् घर्माः तप्ताः विसर्गम् अश्नुवते।

शब्दार्थ—नरः = नेता या पुरुष, देवहितिम् = देवों के द्वारा किए हुए विधान को, जुगुपुः = रक्षा की है। द्वादशस्य = १२ वाँ मास या १२ मासों वाला वर्ष, प्रमिनन्ति = उल्लंघन नहीं करते हैं, संवत्सरे = वर्ष में, प्रावृषि आगतायाम् = वर्षा काल के आने पर, घर्माः = घर्मद्रव्य तथा गर्मी से सन्तप्त (मेंढक), विसर्गम् अश्नुवते = मुक्ति प्राप्त करते हैं।

हिन्दी—इन मेढक रूपी पुरुषों ने (काल के विषय में) देवी-विधान का संरक्षण किया है, ये ऋतु-काल के नियम का उल्लंघन नहीं करते हैं। वर्ष के निश्चित समय में वर्षाकाल के प्रारम्भ होने पर ये ग्रीष्मतप्त जन उससे मुक्ति प्राप्त करते हैं।

Eng. Trans.—They have guarded the divine order of the twelve month : these men infringe not the season. In a year, the rain time heaving come, the heated frogs and milk-offerings obtain release.

टिप्पणियाँ

१. यहाँ भी 'घर्मा:' के दोनों ही अर्थ हैं—घर्म नामक हविष् द्रव्यविशेष तथा ग्रीष्म से पीड़ित मेढक या अन्य जन।

२. जुगुपुः = 'गुप्' (रक्षणे), लिट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन।

३. मिनन्ति—'मीङ्' (हिंसायाम्), लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन।

४. 'देवहितिम्' के भी दोनों अर्थ हैं—काल के विषय में दैवी विधान, जैसाकि सायण ने किया है, तथा हविष्रूप, दूसरा अर्थ वेंकटमाधव का है।

५. इस मन्त्र में उस तथ्य का संकेत किया है। जब वर्षारम्भ वर्षा ऋतु से माना जाने लगा था – प्रो० याकोबी ने इंगित किया है।

गोमायुरदादजमायुरदात् पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः॥ १०॥

पदपाठः

गोऽमायुः। अदात्। अजऽमायुः। अदात्। पृश्निः। अदात्। हरितः। नः। वसूनि। गवाम्। मण्डूकाः। ददतः। शतानि। सहस्रऽसावे। प्र। तिरन्ते। आयुः।।

सायण-भाष्यम्—गोरिव मायुः शब्दो यस्य तादृशो मण्डूकः वसूनि धनानि नः अस्मभ्यम् अदात् ददातु। अजमायुः च अदात् ददातु। हरितः हरितवर्णश्च अदात् ददातु। पृश्निः पृश्निवर्णश्च अदात् ददातु। तथा सहस्रसावे सहस्रसंख्याका ओषधयः सूयन्ते उत्पद्यन्ते इति वर्षर्तु सहस्रसावः। तस्मिन् सति सर्वे मण्डूकाः गवां शतानि अपरिमिता गाः ददतः अस्मभ्यं प्रयच्छन्तः आयुः जीवनं प्रतिरन्ते प्रवर्धयन्तु।। १०।।

अन्वयः—गोमायुः नः वसूनि अदात्। अजमायुः अदात्, पृश्निः अदात्, हरितः (अदात्)। सहस्रसावे गवां शतानि ददतः मण्डूकाः आयुः प्र तिरन्ते।

शब्दार्थ – गोमायुः = गाय की तरह रँभाने वाले ने, नः = हमें, वसूनि = धन, अदात् = दिया है, अजमायुः = बकरी की तरह मिमियाने वाले ने, पृश्निः = चित्र-वर्ष,

सहस्रसावे = सहस्रसवन वाले यज्ञ में अथवा हजारों वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली वर्षा ऋतु में, प्रतिरन्ते—बढ़ाई है।

हिन्दी—गाय की तरह रँभाने वाले ने हमें धन दिया है, बकरी की तरह मिमियाने वाले ने (हमें धन) दिया है। चित्रवर्ण एवं पीतवर्ण मण्डूकों ने भी हमें धन दिया है। सैकड़ों गायें देने वाले इन मण्डूकों ने इस सहस्रसवन वाले यज्ञ में अथवा वर्षा ऋतु में अपनी आयु बढ़ा ली है।

Eng. Trans.—He that lows like a cow has given us riches, he that bleats like a goat has given them, the speckled one has given them, and the yellow one. The frogs giving us hundreds of cows prolong their life in a thousandfold soma-pressing.

टिप्पणियाँ

१. सहस्रसावे = सायण ने इसका अर्थ वर्षा ऋतु किया है, जिसमें सहस्रों औषधियाँ उत्पन्न होती हैं; किन्तु मैक्डॉनेल ने 'वर्ष भर चलने वाला सोमयाग' अर्थ किया है—the term probably refers to a soma-sacrifice lasting a year with three pressings a day (amounting rougnly to a thousand.'

२. अदात् = 'डुंदाञ्' (दाने), लङ् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन का वैदिक रूप।

३. प्र तिरन्ते—आत्मनेपदी धातु होने से प्रतरण 'वितरण' की क्रिया आत्मनिष्ठ है। मण्डूक अपनी आयु बढ़ाते हैं। 'हमारी आयु बढ़ाते हैं' —यह अनुवाद, जैसाकि मैक्डॉनेल ने किया है, उपयुक्त नहीं प्रतीत होता है।
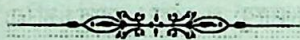
पृथिवीसूक्तम्

(अथर्वसंहिता १२.६)

ऋषि-अथर्वा　　　　देवता-भूमि

संहितापाठः

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नों भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।१।।

पदपाठः

सत्यम्। बृहत्। ऋतम्। उग्रम्। दीक्षा। तपः। ब्रह्म।
यज्ञः पृथिवीम्। धारयन्ति। साः। नः। भूतस्य। भव्यस्य।
पत्नी। उरुम्। लोकम्। पृथिवी। नः। कृणोतु।।१।।

अन्वय—सत्यं, बृहत्, (अथवा बृहत् सत्यम्) ऋतम् उग्रं, दीक्षा, तपः ब्रह्म, यज्ञः (च) पृथिवीं धारयन्ति। नः भूतस्य भव्यस्य पत्नी सा पृथिवी नः लोकम् उरुं कृणोतु।।१।।

प्रसंग—भूमण्डल या पृथ्वीमण्डल के अधिवासी राजा और प्रजा को अपने राष्ट्र, राज्य या भारतभूमि को किन गुणों या कर्मों के द्वारा उठाना या श्रेष्ठ बनाना चाहिये, इसका उपाय इस मन्त्र में वर्णित है।

शब्दार्थ—सत्यम् = सत्यभाषण, सत्याचरण और सत्यसङ्कल्प, बृहत् = व्यापक रूप से अनुष्ठित, ऋतम् = नियमपालन, उग्रम् = तेजस्विता, दीक्षा = व्रत-निष्ठा, तपः = तपश्चर्या, ब्रह्म = ईश्वरविश्वास, ईश्वर भक्ति और ईश्वरार्पणबुद्धि से किये गये कार्य, यज्ञः = परोपकार, पूर्णकार्य या विद्वत्पूजा, इन भावों से किये गये कार्य अर्थात् फललिप्सा न रखना, ये सब गुण यदि राजा और प्रजा दोनों में होते हैं तो उनसे ये दोनों, पृथिवीम् = भारतराष्ट्र का या अपनी भूमि को, धारयन्ति = उन्नत करते हैं। नः = हमारे, भूतस्य = भूतकाल के गौरव की, भव्यस्य = भविष्यकाल के उत्कर्ष की, पत्नी = रक्षा करने वाली (भूत, भविष्यत्काल के कहने से वर्तमान काल के गौरव की रक्षा स्वयं आ गयी), सा = वह, पृथिवी = आध्यात्मिकादि त्रिविध गौरव को बढ़ाने वाली, नः = हमारे, लोकं = देश या राष्ट्र को, उरुं = सर्वश्रेष्ठ, कृणोतु = बनावे।।१।।

हिन्दी अनुवाद—सत्य, व्यापक रूप से नियमों पर चलना, तेजस्विता, व्रतपालन, कर्मेन्द्रियों से तपश्चर्या, भगवद्भक्ति और परोपकार वृत्ति या यज्ञानुष्ठान किसी देश या राष्ट्र या मातृभूमि को उन्नत बनाते हैं। हमारे लिये भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान की रक्षा करने वाली यह मातृभूमि हमारे देश को विशाल तथा सर्वश्रेष्ठ बनाये।।१।।

सायणाचार्यकृतपृथिवी सूक्त विनियोगः

पृथिवीसूक्ते पृथिव्याः प्रभूतं निसर्गवर्णनम्। कतिचित् पौराणिकीः कथाश्चानुलक्ष्यवर्णनम्। बहुवारं च ऋषिः पृथिवीं वरान् प्रार्थयते।

सम्प्रदायानुसारेण तु सूक्तं बहुविधं विनियुज्यते। तद्यथा "सत्यं बृहत्" इत्यनुवाको वास्तोष्पत्यगणे पठितः। अस्य गणस्य विनियोगः "इहेत ध्रुवाम्" (३.१२) इति सूक्ते द्रष्टव्यः।

तथा आग्रहायणीकर्मणि रात्रौ अभ्यातानान्तं कृत्वा त्रयश्चरवः श्रपयितव्याः। ततः अनेनानुवाकेन अग्नेः पश्चात् गर्ते दर्भान् आस्तीर्य एकं चरुं सकृत् सर्वहुतं जुहोति। द्वितीयं चरुं अनेनानुवाकेन संपात्याभिमन्य अश्नाति। तृतीयं चरुं "सत्यं बृहत्" इति आद्याभिः सप्तभिर्ऋग्भिः "भूमे मातः" (६३) इत्यष्टम्या ऋचा च त्रिर्जुहोति। अष्टानाम् ऋचाम् आवृत्त्या होमत्रयं संपादनीयम् इत्यर्थः। अग्नेः पश्चाद् दर्भेषु कशिपुतृणमयं प्रस्तरणमास्तीर्य "विमृग्वरीम्" (२९) इत्यनयोपविशति। "यास्ते शिवाः" (९.२.२५) इति संविशति। "यच्छयानः" (३४) इति पर्यावर्तते। "सत्यं बृहत्" इति नवभिः "शान्तिवा" (५९) इत्यृचा "उदायुषा" (३.३१.१०.११) इति द्वाभ्यां च प्रातरुत्तिष्ठते। "उद्वयम्" (७.५५.७)

इति गच्छति। "उदीराणाः" (२८) इत्यृचा प्राङ्वोदङ्वा बाह्यतो गच्छति। "यावत् ते" (३३) इत्यृचा भुवम् ईक्षते।। इत्याग्रहायणीकर्म।।

तथा पुष्टिकामः उन्नतं स्थलमारुह्य "यावत् ते" (३३) इत्यृचा ईक्षते।।

तथा अनेनानुवाकेन उदपात्रं संपात्य पुरस्तादग्नेः सीरं युक्तं संप्रोक्षति।।

तथा अनेनानुवाकेन कृषिकर्म भवति।। तच्च "सीरा युञ्जन्ति" इति (३.१७) सूक्ते विस्तरेणोक्तं द्रष्टव्यम्।।

तथा पुत्रधनादिसर्वफलप्राप्त्यर्थं "यस्यां सदोहविर्धाने" (३८-४०) इति तिसृभिराज्यं जुहोति।

तथा व्रीहियवाद्यन्नकामः "यस्यामन्नम्" (४२) इत्यृचा पृथिवीम् उपतिष्ठते।।

तथा मणिहिरण्यादिकामः "निधिं बिभ्रती" (४४-४५) इति द्वाभ्यां पृथिवीम् उपतिष्ठते।।

तथा प्राप्यापि मणिं हिरण्यं वा आभ्यामेवोपतिष्ठते।।

तथा पुष्टिकामः वृष्टिकाले "यस्यां कृष्णम् (५२) इत्यृचा नवोदकम् अभिमन्त्र्य आचमनं स्नानं न करोति।।

तदुक्तं कौशिकेन—"सत्यं वृहद्" इत्याग्रहायण्याम्। पश्चात् अग्नेर्दर्भे सर्वहुतम्। द्वितीयं संपातवन्तम् अश्नाति। तृतीयस्यादितः सप्तभिर्भूमे मातरिति त्रिर्जुहोति। पश्चाद् अग्नेर्दर्भेषु कशिप्वास्तीर्य विमृग्वरीम् इत्युपविशति। यास्ते शिवा इति संविशति। यच्छयान इति पर्यावर्तते। नवभिः शन्तिवेति दशम्योदायुषेत्युपोत्तिष्ठति। उद्वयमित्युत्क्रामति। उदीराणा इति त्रीणि पदानि प्राङ् वोदङ् वा बाह्येनोपनिष्क्रम्य यावत् त इति वीक्षते। उन्नताच्च। पुरस्ताद् अग्नेः सीर उक्तं उदपात्रेण संपातवतावसिञ्चति। आयोजनानाम् अप्ययः। यस्यां सदोहविर्धाने इति जुहोति वरो म आगमिष्यतीति। यस्यामन्नम् इत्युपतिष्ठते। निधिं विभ्रतीति मणिं हिरण्यकामः। एवं विद्वान् यस्यां कृष्णम् इति वार्षकृतस्याचामति। शिरस्यानयते इति (कौ० ३.७)।। वरो वरणीयोर्थो मम भवेद् इत्यर्थः।।

तथा ग्रामपत्तनादिरक्षार्थम् अनेनानुवाकेन चतुरः पुरोडाशान् अश्मोत्तरान् कृत्वा ग्रामादिकोणेषु निखनति।।

तथा ग्रामपत्तनादिरक्षार्थम् अनेनानुवाकेन एकैकस्य पुरोडाशस्य पाषाणम् उपरि कृत्वा उभयान् सम्प्राप्तवतः कृत्वा ग्रामादिकोणेषु निखनति। सर्वत्र प्रतिद्रव्यं सूक्तावृत्तिः।।

तथा अग्नेरायतनस्य असंतापयुक्ते देशे शयानः एतम् अनुवाकं जपति। सर्वत्र कर्मणां विकल्पः।।

तदुक्तं कौशिकसूत्रे—"भौमस्य दृतिकर्माणि। पुरोडाशान् अश्मोत्तरान् अन्तः स्रक्तिषु निदधाति। उभयान्तसंपातवतः। सभाभागधानेषु च। असन्तापे ज्योतिरायतनस्यैकतोन्यं शयानो भौमं जपति". इति। (कौ० ५.२)।। तथा भूमिचलने अस्यानुवाकस्य होमे विनियोगः। "अथ यत्रैतद् भूमिचलो भवति" इत्युपक्रम्योक्तं कौशिकेन। "सत्यं बृहद् इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इति (कौ० १३.६)।।

तथा सोमयज्ञे दीक्षितनियमेषु मूत्रपुरीषशुद्ध्यर्थं लोष्टादाने विनियोगः। तदुक्तं वैताने—"सत्यं बृहद् इति लोष्टम् आदाय इति (वै० ३.२)।।

तथा "पार्थिवीं भूमिकामस्य इति (न०क० १७) विहितायां पार्थिव्यां अहाशान्तौ अस्यानुवाकस्य विनियोगः। तदुक्तं नक्षत्रकल्पे—"सत्यं बृहद् इत्यनुवाकः पार्थिव्याम्" इति (न०क० १८)।।

विशेष—सायणभाष्य उपलब्ध न होने के कारण (पृथिवीसूक्त पर) गायत्रीभाष्य दिया जा रहा है।

गायत्रीभाष्य—सत्यं त्रिकालस्थायि बृहत् महत् ऋतं ब्रह्म परमेश्वरः दीक्षा यज्ञादिनियमः उग्रं कष्टसाध्यं तपः चान्द्रायणादि, यज्ञः अग्निष्टोमादिः, एते पृथिवीं भूमिं धारयन्ति। उक्तञ्च 'सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन वर्द्धते तपः' इत्यादि। सः (पुंस्त्वं छान्दसम्) सा भूतस्य उत्पन्नस्य प्राणिजातस्य भव्यस्य उत्पत्स्यमानस्य च पत्नी पालयित्री पृथिवी नोऽस्माकं लोकं निवासस्थानम् ऊरु विस्तीर्णं कृणोतु करोतु।।१।।

व्याकरण—सत्यम्—यह शब्द निरुक्त के अनुसार अस् धातु और इण् धातु से मिलकर बना है। जिससे सत्ता और प्राणी हों उसे सत्य कहते हैं। यहाँ इण् गतौ से यकार लिया गया और अस् धातु के सकार को आदि में रखा गया तथा मध्य में तुगागम् दीक्षा-दीक्ष् (मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु) + अ + टाप्। बृहत्—बृह् + शतृ प्रत्यय। उग्रम्—उत् + गृ + क। भव्यस्य—भू + भव्यगेयेति कर्तरि यत्। पत्नी—पा धातु से डति प्रत्यय और नुडागम तथा ङीष्। उरुः—ऊर्णुञ् आच्छादने + 'महति ह्रस्वश्च' इति कु, नुलोपो, ह्रस्वश्च। लोकम्—लोक्यते—लोक् + घञ् (कर्मणि)।।१।।

टिप्पणी—श्रीपाद दामोदरसातवलेकर का अभिमत है कि राष्ट्रसत्ता को चाहने वाले

मनुष्य में ये गुण होने चाहिये—सत्यप्रियता, उद्योगशीलता, महत्त्वाकांक्षा के साथ कार्यारम्भ करने और सिद्ध करने का उत्साह, वस्तुस्थिति का ज्ञान, धैर्य, साहस, तेजस्विता, धर्मनिष्ठा, इन्द्रियनिग्रह, स्वाध्यायशीलता, शान्तिपरता, परोपकारिता, ईश्वर-भक्ति, कार्यदक्षता, नियमपरायणता, धनसंचय, अतिथि-सेवाव्रत, सहिष्णुता, मातृ-भूमि पर अटल निष्ठा इत्यादि। जिन मनुष्यों में ये गुण रहते हैं वे ही राज्य कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इन्हीं आवश्यक गुणों का उल्लेख कर मातृ-भूमि से प्रार्थना की गई है कि हे मातृ-भूमि! हम इन उपर्युक्त उत्तम गुणों से युक्त होंवे। तुम्हारा संरक्षण करते हैं, तू अपने आधार से भूत-भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों के सम्पूर्ण पदार्थों का विधिवत् पोषण करने में समर्थ है। हम सदैव तेरा संरक्षण करते हैं। तू भी हमारी कीर्ति बढ़ाने का कारण हो। इस मन्त्र में इन विशिष्ट गुणों के द्वारा बल-प्राप्ति की ओर संकेत है। स्वर्ग प्राप्त करने में बल का महत्त्व है। मनुष्यों में जो सर्वाधिक सामर्थ्यवान् और प्रभावशाली होगा, वही राष्ट्र का अधिष्ठाता बने। राजा को दुर्बल नहीं होना चाहिए। दुर्बल राजा से समस्त पृथ्वी या राष्ट्र दुर्वल हो जाता है। सुख प्राप्ति की इच्छा से प्रजाजनों को बलवान् पुरुष को ही राष्ट्र का अधिष्ठाता नियुक्त करना चाहिये। प्रस्तुत मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है।।१।।

संहितापाठः

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।।२।।

पदपाठः

अ सम्ऽबाधम्। मध्यतः। मानवानाम्। यस्याः। उत्ऽवतः। प्रऽवतः।
समम् । बहु। नानाऽवीर्याः। ओषधीः। या। बिभर्ति। पृथिवी। नः।
प्र थ ताम्। राध्यताम्। नः।।२।।

अन्वय—यस्याः असंबाधं मानवानां मध्यतः प्रवतः उद्वतः समं बहु। या नानावीर्याः ओषधीः बिभर्ति, नः पृथिवी प्रथताम्, नः राध्यताम्।।२।।

शब्दार्थ—यस्याः = जिस पृथ्वी में, असंबाधम् = असंकीर्ण भाव से अर्थात् फैल-फैलकर रहने वाले, मानवानाम् = मनुष्यों के, मध्यतः = गृह या क्षेत्रादि के मध्य में, प्रवतः = विस्तार वाली, उद्वतः = आकाश में फैलने वाली, समम् = एक साथ, बहु = अनेक प्रकार की, या = जो हमारी मातृभूमि, नानावीर्याः = अनेक शक्तियों से युक्त, ओषधीः = ओषधियों को, बिभर्ति = धारण करती या उपजाती है। वह, नः पृथिवी = हमारी विस्तृत राष्ट्रभूमि, प्रथताम् = फले-फूले, तथा, नः = हमारी अर्थात् देश-वासियों की, राध्यताम् = समृद्धि को करे।।२।।

हिन्दी अनुवाद—जिस पृथ्वी में फैल-फूल कर रहने वाले लोगों के गृहों के मध्य भाग में विस्तृत, आकाश में फैलने वाले वृक्ष और लतायें लहलहाते रहते हैं। उन लताओं में अनेक प्रकार की शक्तियों से युक्त औषधियाँ गुल्म और तृणादि हैं। ऐसी हमारी मातृभूमि सदा बनी रहे और हमें समृद्ध करे।।२।।

विशेष—भारतनिवासी प्रत्येक व्यक्ति के पास विस्तृत भवन हों, कबूतर खाने नहीं। उन भवनों में फलदार वृक्ष और फूलों वाली लतायें भी हों। प्रवत शब्द वृक्ष वाची है और उद्वत शब्द लता वाची है। उद्वत का पर्यायवाची भी उद्भिज है। प्रवतः शब्द से गगनचुम्बी वृक्ष लिये गये हैं। इसमें भारतीयों का वैभव काम्य है।।२।।

गायत्रीभाष्य—असंवाधं सर्वबाधारहितं मानवानां मनुष्याणां मध्यतः समक्षं यस्याः पृथिव्याः उद्वतः उन्नतं प्रवतः प्रकृष्टं निम्नम् समञ्च स्थानं वर्तते। या पृथिवी नानावीर्या नानावीर्याणि ओषधीः व्रीहि-यवाद्याः बिभर्ति धारयति, सा नोऽस्माकं कृते प्रथताम् विस्तीर्णा भवतु। किञ्च नोऽस्माकं कार्याणि राध्यताम् साध्नोतु।।२।।

व्याकरण—प्रवतः और उद्वतः में प्र शब्द और उत् शब्द से मतुप् प्रत्यय हुआ है। असंवाधम्—नास्ति सङ्गता बाधा यत्र तत् (यह क्रिया विशेषण है)। ओषधीः—ओष + धा + कि। ओष शब्द में 'उष' धातु से घञ् प्रत्यय हुआ है। राध्यताम्—'राध् संसिद्धौ' से लोट् प्र०पु०ए०व० का रूप है। यह धातु दैवादिक और सौवादिक दोनों प्रकार की है। यहाँ कर्म में यक् प्रत्यय हुआ है।।२।।

टिप्पणी—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने उद्वतः प्रवतः का अर्थ नीचता और उच्चता किया है। उनका भाव है कि राष्ट्र या देश में पारस्परिक द्रोह नहीं होना चाहिये सभी लोग हिल-मिल कर मैत्री भाव से रहें। विशेषकर राष्ट्रनायकों में तो पूर्ण एकता होनी चाहिये ताकि वे लोग परस्पर मिलकर राष्ट्र के हितकारक कार्यों को सम्पन्न करें। जिस मातृभूमि में

रोगविनाशक, पुष्टिकारक अनेकानेक औषधियाँ और वनस्पतियाँ हैं, वह हमारी प्रिय मातृभूमि हमारी कीर्ति और यश को सभी ओर फैलाये।

पूर्ण शक्ति प्राप्त करने के लिए एकता तथा मैत्रीभाव का होना अत्यन्त आवश्यक है। एकता और मैत्रीभाव से सुसम्बद्ध शक्ति को प्राप्त कर हम राष्ट्र के कार्यों में संलग्न होवें। शारीरिक शक्ति के विकास के लिये हमारी मातृभूमि हमें अनेक प्रकार की ओषधियों और वनस्पतियों को प्रदान करती है, जिनसे हम शारीरिक-मानसिक शक्तियों को प्राप्त करते हैं। यहाँ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द है।।२।।

संहितापाठः

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।३।।

पदपाठः

यस्याम्। समुद्रः। उत। सिन्धुः। आपः। यस्याम्। अन्नम्। कृष्टयः। सम्ऽबभूवुः। यस्याम्। इदम्। जिन्वति। प्राणत्। एजत्। सा। नः। भूमिः। पूर्वऽपेये। दधातु।।३।।

अन्वय—यस्यां समुद्रः उत सिन्धुः, आपः, यस्यामन्नं कृष्टयश्च संबभूवुः। यस्यां प्राणदेजत् इदं जिन्वति, सा भूमिः नः पूर्वपेये दधातु।।३।।

शब्दार्थ—यस्याम् = जिस भारत भूमि को, **समुद्रः** = समुद्र तीन ओर से घेरे हुए हैं, **उत** = तथा, **सिन्धुः** = सिन्धु नाम की अथवा ब्रह्मपुत्र, यमुना और गङ्गा नाम की नदियाँ बह रही हैं। **आपः** = जिस पृथ्वी पर कूप तड़ागादि के जल भी हैं। जिनके कारण, **यस्याम् अन्नं** = जिस भारत-भूमि में अन्न उत्पन्न होता है। **च** = और, **कृष्टयः** = खेतियाँ, **संबभूवुः** = हो रही हैं। **यस्यां** = जिसमें, **प्राणत्** = जङ्गम प्राणी, **एजत्** = स्थावर जगत्, **इदं** = ये दोनों प्रकार का जगत्, **जिन्वति** = प्रसन्नतापूर्वक रहता है, **सा** = वह इस प्रकार की, **भूमिः** = हमारी भारत भूमि, **नः** = हमारे लिये, **पूर्वपेये** = पूर्व सृष्टि के समान पेय (पान करने के योग्य) दुग्ध सोम-रसादि को (पान और भोजन का नित्य सम्बन्ध है, अतः

पेय पद से भोज्य, लेह्य, चोष्य आदि प्रकारों के पदार्थों का भी अर्थापत्ति से ग्रहण किया जाता है) दधातु = प्राप्त करये।।३।।

हिन्दी अनुवाद—जिस भूमि में समुद्र, नदी, तड़ागादि पाये जाते हैं अर्थात् जल की कोई कमी नहीं है और उनके कारण कृषि के द्वारा विविध धान्यों की उत्पत्ति होती है जिससे स्थावर-जङ्गम दोनों ही प्राणयुक्त हैं, वह भूमि हमें उत्तम पेय एवं भोज्य पदार्थों को दे। अर्थात् हम अन्नों फलवान् वृक्षों और पुष्पयुक्त लताओं से अनेक प्रकार की भोज्य, पेय सामग्री यन्त्रादि उपायों से उपलब्ध करें।।३।।

विशेष—इस मन्त्र में प्राण धारण करने के हेतु अत्यन्तावश्यक जल ततः उससे स्वयम् अथवा भूमिकर्षण से उत्पन्न होने वाले अन्नादि भोज्य द्रव्य, ततः उन पर आश्रित जीवधारी, उनमें भी पहले केवल श्वासक्रिया करने वाले लता वृक्षादि अर्धचेतन तत्पश्चात् चेष्टावान् चेतन जगत् का बड़े सुन्दर क्रम से वर्णन करते हुए पृथ्वी माता से समस्त उत्तमोत्तम भोगों को देने की प्रार्थना की गयी है, अतः यह मन्त्र सृष्टिक्रम पर भी प्रकाश डालता हुआ पाठकों में पृथ्वी माता के प्रति भक्तिभावना को जगाने में अत्यन्त समर्थ एवं उत्तम है।।३।।

गायत्रीभाष्य—यस्यां पृथिव्यां समुद्रः सिन्धु उत अपि च नदीसमुदायः आपः जलानि अन्नम् अदनीयम् कृष्टयः मनुष्याः संवभूवुः उत्पन्नानि। किञ्च यस्यां पृथिव्याम् इदं स्थावरजङ्गमात्मकं जगत् प्राणत् प्राणधारणं करोति एजत् चेष्टते च सा भूमिः नोऽस्मभ्यम् पूर्वपेये (प्रथमार्थे सप्तमी) श्रेष्ठपेये क्षीरादिपदार्थजातम् दधातु ददातु (दधातेर्दानार्थे वृत्तिः)।।३।।

व्याकरण—अन्नम्—अद् भक्षणे + क्त। अद्यते इति अन्नम्। कृष्टयः—कृष् + क्तिन्, प्रथमा, ब० व०। प्राणत्—प्र + अन् + शतृ = प्राणत्। एजत्—एजृ कम्पने + शतृ। जिन्वति—जिन्व प्रीणने + लट्, प्र० पु० ए० व०। भूमिः—भवन्ति अस्यां भावाः पदार्थाः भूतानि वा इति भूमिः। 'भुवः कित्' इति मिप्रत्ययः। पूर्वपेये—पूर्व + पा + यत्। ईद्यति से यत् तथा गुण। यहाँ प्रथमा अर्थ में सप्तमी का प्रयोग है। संवभूवुः—इसका वचन व्यत्यय से 'अन्नम्' के साथ भी अन्वय है।।३।।

टिप्पणी—पण्डित सातवलेकर इस मन्त्र के भावार्थ को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं- जिस हमारी मातृभूमि में सागर, महासागर, नद-नदी, तालाब, कुएँ, बावली नहर, झीलें इत्यादि खेती को पानी मिलने के बड़े-बड़े साधन हैं और जिस भूमि में सब तरह के विपुल

अन्न पैदा होकर सबको खाने को मिलता है। जिससे सब प्राणिमात्र सुखी हैं तथा जिसमें कारीगर लोग कला-कौशल में कुशल हैं। किसान लोग खेती के काम में प्रवीण हैं और अन्य लोग भी उद्योगी हैं, वह हमारी मातृभूमि हमें सदैव उत्तमोत्तम भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य देने वाली हो।

इस प्रकार इस मन्त्र में मातृ-भूमि की प्रशस्ति का गायन हुआ है। इसमें भूमि माता की सभी प्राणियों पर होने वाली सहज कृपा वर्णित है। प्रस्तुत मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है।।३।।

संहितापाठः

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।४।।

पदपाठः

यस्याः। चतस्रः। प्रऽदिशः। पृथिव्याः। यस्याम्। अन्नम्। कृष्टयः। समबभूवुः। या बिभर्ति। बहुऽधा। प्राणत्। एजत्। सा। नः भूमिः। गोषु अपि। अन्ने। दधातु।।४।।

अन्वय—यस्याः पृथिव्याः चतस्रः प्रदिशः (सन्ति), यस्याम् अन्नं कृष्टयः संबभूवुः। या प्राणत् एजत् बहुधा (जगत्) बिभर्ति, सा भूमिः, न गोषु, अपि अन्ने दधातु।।४।।

उत्थानिका—पूर्वमन्त्रोक्त अर्थ को यहाँ प्रकारान्तर से पुनः उपस्थित किया गया है।।४।।

शब्दार्थ–यस्याः = जिस, **पृथिव्याः** = पृथ्वी की, **चतस्रः** = चार, **प्रदिशः** = पूर्व आदि चार दिशायें (तथा ऊर्ध्व एवं अधः नामक दो दिशायें और आग्नेय, वायव्य, नैर्ऋत्य, ईशान आदि चार उपदिशायें इस प्रकार कुल मिलाकर दश दिशायें हैं) और **यस्याम्** = जिस पृथ्वी में, **अन्नम्** = अन्न (संबभूव = उत्पन्न हुआ) तथा, **कृष्टयः** = खेतियाँ, **संबभूवुः** = होती हैं। **या** = जो पृथ्वी, **प्राणत्** = जङ्गम जगत् को, **एजत्** =

स्थावर जगत् को, **बहुधा** = अनेक प्रकार के भोज्य आदि से, **बिभर्ति** = भरण-पोषण करती है। **सा** = वह, **भूमिः** = पृथ्वी, **गोषु** = गवादि पशुओं को, **अपि** = तथा, **अन्ने** = अन्नों को, **दधातु** = प्राप्त कराये।।४।।

हिन्दी-अनुवाद—जिस हमारी मातृभूमि की चार दिशायें, चार उपदिशायें तथा ऊर्ध्व एवं अधः नाम से दो दिशायें हैं, जिसमें उत्तम अन्न की उत्पत्ति होती है तथा खेतियाँ होती हैं। जो जंगम तथा स्थावर जगत् का पालन करती है। वह हमारी मातृभूमि हमें गो आदि पशुओं तथा अन्नों को प्राप्त कराये।।४।।

गायत्रीभाष्य—यस्याः पृथिव्याः सकाशात् चतस्रः प्रदिशः पूर्वाद्या दिशः तथा अन्नं व्रीहियवादिकम् कृष्टयो मनुष्याः संबभूवुः उत्पद्यन्ते स्म। या भूमिः बहुधा बहु प्रकारेण एजत् प्राणत् प्राणिजातम् चेष्टमानम् बिभर्ति सा भूमिः नोऽस्मभ्यं गोषु अपि च अन्ने (उभयत्र प्रथमार्थे सप्तमी) गाः अन्नञ्च दधातु ददातु।।४।।

व्याकरण—बहुधा—बहु + धा। कृष्टयः—कृष् + क्तिन्।।४।।

टिप्पणी—पण्डित सातवलेकर लिखते हैं कि जिस हमारी मातृभूमि में अत्यन्त उद्योगी तथा कलाकौशल खेतीवारी में प्रवीण परिश्रमी लोग होते आये हैं और जिस भूमि की चारों दिशाओं और विदिशाओं में सर्वत्र उ़त्तम धन-धान्य खूब उत्पन्न होता है जिसके कारण सम्पूर्ण पशुपक्षी अधिक वनस्पति और अन्य जीवधारियों का उत्तम प्रकार से पालन, पोषण और संरक्षण होता है वह हमारी मातृभूमि हमें सदैव गाय, घोड़े और अन्न इत्यादि देने वाली हो।

इस मन्त्र में मातृभूमि से यह प्रार्थना की गई है कि उसमें अनेक प्रकार के उद्योगी और विभिन्न कलाओं में चतुर लोग होते आये हैं जिनके सत्प्रयासों से सभी का संरक्षण हुआ है। वह हमारी मातृभूमि हमें अन्न, पशु, वनस्पति आदि से संयुक्त करे। अन्न, पशु, वनस्पति आदि से ही कोई राष्ट्र शक्तिशाली बन सकता है, अतएव तदर्थ मातृभूमि से प्रार्थना की गई है। इस मन्त्र में त्र्यवसाना षट्पदा जगती छन्द है।।४।।

संहितापाठः

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।।५।।

पदपाठः

यस्याम्। पूर्वे। पूर्वऽजनाः। विऽचक्रिरे। यस्याम्। देवाः। असुरान्। अभिऽवर्तयन्। गवाम्। अश्वानाम्। वयसः। च। विऽस्था। भगम्। वर्चः। पृथिवी। नः। दधातु।।५।।

अन्वयः—यस्यां पूर्वे पूर्वजनाः विचक्रिरे, यस्यां देवाः असुरान्, अभ्यवर्तयन्। गवाम् अश्वानां वयसश्च विष्ठा पृथिवी नः भगं वर्चः (च) दधातु।।५।।

शब्दार्थ—यस्याम् = जिस पृथ्वी में, पूर्वे = प्राचीन, पूर्वजनाः = हमारे पूर्वज, विचक्रिरे = विकार को प्राप्त हुए, अर्थात् उनका पार्थिव शरीर भस्म रूप में भूमि में विलीन हो गया। यस्याम् = जिस पृथ्वी में, देवाः = देवताओं ने या विद्वानों ने असुरान् = असुरों को अर्थात् देवों के द्रोहियों को, अभ्यवर्तयन् = मिट्टी में मिला दिया अर्थात् हरा दिया और जिस पृथ्वी पर, गवाम् = गौ, भैंस, वकरी आदि दूध देने वाले जीवों की, अश्वानाम् = सवारी में काम आने वाले घोड़े, बैल आदि की, च = और, वयसः = मोर, तोते, गिद्ध आदि पक्षी गणों की, विष्ठा = विशेष रूप से स्थिति है वह, पृथिवी = हमारी भारत-भूमि, भगं = ज्ञान आदि ऐश्वर्य और, वर्चः = बल या तेज, नः = हमारे लिए, दधातु = प्रदान करे।।५।।

हिन्दी-अनुवाद—जिस भूमि की मिट्टी में हमारे पूर्वजों ने विविध पराक्रम किये पर और जिस भूमि पर देवों ने असुरों को हराया। जहाँ विविध पशु, पक्षी निवास करते हैं वह भूमि हमें ऐश्वर्य प्रदान करे।।५।।

गायत्रीभाष्य—यस्यां पृथिव्याम् पूर्वे पुरातनाः पूर्वजनाः अस्मत्पूर्वजाः पौरुषं विचक्रिरे विविधं कृतवन्तः। यस्यां पृथिव्यां देवा इन्द्रादयः असुरान् बलिप्रभृतीन् अभ्यवर्तयन् पराजितवन्तः। गवाम् अश्वानाम् वयसः पक्षिणश्च या विष्ठा प्रतिष्ठा आधारभूता सा पृथिवी गम् षड्विधैश्वर्यम् (ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतरिणा।।) वर्चः तेजः नोऽस्मभ्यं दधातु ददातु।।५।।

व्याकरण—विचक्रिरे—वि + कृ + लिट्, प्र० पु० ब० व०। अभ्यवर्तयन्—अभि + वृत् + णिच्, लङ्, प्र०पु०ब०व०। अभिमुखीभूय अवर्तयन्—परावर्तयन्। विष्ठा—वि + स्ता + क्विप्।।५।

टिप्पणी—हमारी मातृभूमि पर प्राचीनकाल में हमारे पूर्वजों ने, ब्राह्मणों ने ज्ञानशक्ति के द्वारा, क्षत्रियों ने शौर्य के द्वारा, वैश्यों ने वाणिज्यदक्षता के द्वारा और विभिन्न प्रकार के कौशलों द्वारा आश्चर्यजनक कार्य किये और सफलतायें प्राप्त की। हमारे पूर्वजों ने सत्य और धर्म की रक्षा के लिये दुष्ट हिंसकों का विनाश किया। इसी पृथ्वी पर पशु-पक्षी प्रतिष्ठित हैं। हम अपनी मातृभूमि से प्रार्थना करते हुए यह कामना करते हैं कि वह हमें ज्ञान-विज्ञान, शौर्य, ऐश्वर्य एवं तेज प्रदान करे। इस मन्त्र में राष्ट्रभक्तों की मातृभूमि से ज्ञान-विज्ञान, शौर्य एवं ऐश्वर्य के लिये प्रार्थना है। प्रस्तुत मन्त्र में त्र्यवसाना षट्पदा जगती छन्द है।।५।।

संहितापाठः

विश्वंभरा वसुधानीं प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥६॥

पदपाठः

विश्वम्ऽभरा। वसुऽधानीं। प्रतिऽस्था। हिरण्यऽवक्षाः। जगतः। निऽवेशनी। वैश्वानरम्। बिभ्रती। भूमिः अग्निम्। इन्द्रऽऋषभा। द्रविणे। नः। दधातु।।६।।

अन्वय—विश्वंभरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षाः जगतः निवेशनी वैश्वानरम् अग्निं च बिभ्रती भूमिः इन्द्रऋषभा नः द्रविणे दधातु।।६।।

शब्दार्थ—**विश्वम्भरा** = जगत् पालयित्री, **वसुधानी** = वसुन्धरा, **प्रतिष्ठा** = जहाँ रहने से या उत्पन्न होने से प्राणियों की प्रतिष्ठा है, अतः प्रतिष्ठा हेतु, **हिरण्यवक्षाः** = स्वर्ण की खानों वाली, **जगत्** = संसार भर की, **निवेशनी** = शरणभूत, **वैश्वानरम्** = अग्नि को अर्थात् सूर्य और भौतिक अग्नि को (यज्ञादि के द्वारा और सूर्य के अस्त न होने से), **बिभ्रती** = धारण करती हुई, **भूमिः** = बहुविध गैरिक, अभ्रक, सङ्गमर्मर प्रभूति को धारण करने वाली, **अग्निम्** = अग्नि को (कोयले से हीरा बनाने वाली, भूगर्भाग्नि को (बिभ्रती), **इन्द्रऋषभा** = इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्य का, ऋषभ अर्थात् ऋषभता श्रेष्ठता

जिसमें ऐसी अर्थात् अन्य भूमि से अधिक ऐश्वर्य देने वाली, (भारत भूमि) **नः** = हमें, **द्रविणे** = ऐश्वर्य, धन, धान्य सम्पत्ति में, **दधातु** = निमग्न कर दे।।६।।

हिन्दी-अनुवाद—यह भारत भूमि संसार को धारण करने वाली, संसार की पालन करने वाली सुवर्णमयी है। यह सूर्य तथा यज्ञादि अग्नियों से और भूगर्भाग्नि से युक्त है। यह हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करे।।६।।

विशेष—इन्द्रऋषभा से 'धन्याः नराः भारतभूमिभागे' इत्यादि पौराणिक के श्लोक से साम्य है। प्रतिष्ठा शव्द से भी जहाँ उत्पन्न होने वाले प्रतिष्ठा के पात्र होते हैं—यह भाव है। जैसे ऋषि आदि तथा वेदोद्धारक ऋषियों के कारण जो प्रतिष्ठा को प्राप्त है।

गायत्रीभाष्य—विश्वम्भरा विश्वं जगत् बिभर्तीति जगद्धारणपोषणकर्त्री वसुधानी वसूनां हिरण्यादीनां धारणकर्त्री प्रतिष्ठा सर्वाश्रयभूता हिरण्यवक्षाः हिरण्यादीना निधयो वक्षसि यस्याः सा तथोक्ता जगतः स्थावरजङ्गमात्मकप्राणिसमुदायस्य निवेशनी आश्रयभूता वैश्वानरं सर्वजन-हितकारिणमग्निं बिभ्रती दधती इन्द्रः परमेश्वरो वराह-रूपधारी यस्याः ऋषभः (विभक्तिव्यत्ययः) ऋषभः स्वामी सा भूमिः नोऽस्मभ्यम् द्रविणे (प्रथमार्थे सप्तमी) धनं दधातु ददातु।।६।।

व्याकरण—विश्वम्भरा = विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा। विश्व + भृ + खच्। वसुधानी = धीयतेऽस्यामिति धानी। धा + अभिकरणे ल्युट्, ङीप्। वसूनां धानीति वसुधानी। षष्ठी तत्पुरुष। प्रतिष्ठा = प्रतिस्थापयति इति। अन्तर्भावितण्यर्थ धातु से प्रति + स्था + अङ् + टाप्। हिरण्यवक्षाः = हिरण्यमेव वक्षः वक्षस्थानीयं यस्याः स। निवेशनी = नि + विश् + ल्युट् + ङीप्। बिभ्रती = भृञ् + शतृ + ङीप् 'उगितश्च'। इन्द्रऋषभा—इन्द्रः ऐश्वर्यम् तेन ऋषभा श्रेष्ठभूता इति इन्द्रऋषभा। द्रविणे = द्रु + इनन्। दधातु = धा धारणपोषणयोः, जुहोत्यादि। लोट, प्र०पु०ए० व०।।६।

टिप्पणी—हमारी मातृभूमि संसार के सभी प्राणियों का पालन-पोषण करने वाली है, सुवर्ण आदि की खानों से संयुक्त है, स्थावर तथा जंगम जीवों को स्थान देने वाली है, सभी प्रकार के मनुष्यों से संयुक्त है—ऐसी उस मातृभूमि से हम प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे राष्ट्रनायकों, ज्ञानियों और वीरपुरुषों को ऐश्वर्य प्रदान करे। इस मन्त्र में त्र्यवसाना षट्पदा जगती छन्द है।।६।।

संहितापाठः

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।७।।

पदपाठः

याम्। रक्षन्ति अस्वप्नाः। विश्वऽदानीम्। देवाः भूमिम्। पृथिवीम्। अप्रऽमादम्। नः। मधु। प्रियम्। दुहाम्। अथो इति। उक्षतु। वर्चसा।।७।।

अन्वय—यां विश्वदानीं पृथिवीं भूमिम् अस्वप्नाः देवः अप्रमादं रक्षन्ति, सा (भूमिः) नः प्रियं मधु दुहाम् अथो वर्चसा उक्षतु।।७।।

शब्दार्थ—याम् = जिस भूमि को, **अस्वप्नाः** = नित्य जागरुक, **देवाः** = देवगण या देवतुल्य मनुष्य, **अप्रमादं** = प्रमाद रहित होकर, **रक्षन्ति** = रक्षा करते हैं, क्योंकि इसे वे, **विश्वदानीम्** = संसार को धन-धान्य देने वाली, **पृथिवीम्** = विस्तृत और, **भूमिम्** = अनेक दिव्य गुणों वाली कहते हैं। **सा** = वह भूमि, **नः** = हमारे लिए, **प्रियम्** = अभीष्ट, **मधु** = माधुर्ययुक्त दुग्धादि, **दुहाम्** = दोहन कर दे, **अथो** = और, **वर्चसा** = तेजस्विता से (हमें) **उक्षतु** = युक्त करे।।७।।

हिन्दी अनुवाद—जिस भारतभूमि की नित्य जागरूक देवगण प्रमादरहित होकर रक्षा करते हैं जो संसार को अन्नादि का दान करती है विस्तृत तथा अनेक गुणों वाली है। वह हमें मधुर दुग्धादि दे और तेजस्वी बनाये।।७।।

गायत्रीभाष्य—यां विश्वदानीं विश्वस्य जगतः आश्रयदात्रीं पृथिवीं विस्तीर्णां भूमिम् अप्रमादम् प्रमादरहितं यथा स्यात्तथा अस्वप्नाः देवाः रक्षन्ति सा भूमिः नोऽस्मभ्यं मधु मधुरं प्रियं हृद्यं पयः दुहाम् दोग्धु गोद्वारा ददातु।।७।।

व्याकरण—विश्वदानीम् = विश्वेभ्यः दानं यस्या सा ताम्। विश्व + दा = ल्युट् + ङीप्। पृथिवीम् = प्रथ विस्तारे। प्रथते विस्तारं यातीति पृथिवी 'प्रथेःषिवन् सम्प्रसारणं च' इस उणादि सूत्र से षिवन् प्रत्यय तथा सम्प्रसारण और ङीप् है। अस्वप्ना : = न विद्यते स्व॰ाः येषां ते। दुहाम् = दुह् धातु, लोट् आत्मनेपद, प्र० पु० ए० व०। तकार लोप है।।७।।

टिप्पणी—जिस मातृभूमि की निद्रा आलस्यादि दोषों से रहित समस्त विद्याओं में पारंगत तथा उद्योगशील विद्वान् और वीर प्रमादरहित होकर सेवा करते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमें सभी प्रकार के उत्तम, मधुर, प्रिय पदार्थ प्रदान करे। इस मंत्र में मातृभूमि उपासक पृथ्वी से यह प्रार्थना कर रहा है कि वह राष्ट्र की रक्षा के लिए सभी प्रकार के उत्तमोत्तम प्रिय और मधुर पदार्थ प्रदान करे। यहाँ प्रस्तारपङ्क्ति नामक छन्द है।।७।।

संहितापाठः

यार्णवेऽधि सलिलमग्र असीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योऽमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे।।८।।

पदपाठः

या। अर्णवे । अधि। सलिलम्। अग्रे। आसीत्। याम्। मायाभिः।
अनुऽचरन्। मनीषिणः। यस्याः। हृदयम्। परमे। विऽओमन्।
सत्येन। आऽवृतम्। अमृतम्। पृथिव्याः। सा। नः। भूमिः।
त्विषिम्। बलम्। राष्ट्रे। दधातु। उत्ऽतमे।।८।।

अन्वय—या (भूमिः) अग्रे अर्णवे अधि सलिलम् आसीत् यां मनीषिणः मायाभिः अन्वचरन्, यस्याः पृथिव्याः सत्येन आवृतम् अमृतं हृदयं परमे व्योमन् (अस्ति), सा भूमिः नःत्विषिं वलं (च) दधातु उत्तमे राष्ट्रे च दधातु।।८।।

शब्दार्थ—**या** = जो भूमि, **अग्रे** = सृष्टि के आरम्भ में, **अर्णभ्व** = समुद्र में, **अधिसलिलम्** = जल के अन्दर, **आसीत्** = थी, **याम्** = जिस पृथ्वी को, **मनीषिणः** = मनीषियों ने, **मायाभिः** = वैज्ञानिक विधियों से **अन्वचरन्** = विद्वानों ने सृष्टि या जगत् को सत्-असत् अनिर्वचनीय या सदसत् या माया रूप से कहा। **यस्याः** = जिस पृथ्वी का, **हृदयम्** = रहस्य, **परमे** = उत्कृष्ट, **व्योमन्** = ईश्वरीय शक्ति में निहित है, वह रहस्य यह है कि, **पृथिव्याः** = पृथिवी का, **हृदयं** = तत्त्व, परमाणु रूप से, सद् रूप से,नित्य है, अत एव वह तत्त्व, **सत्येन** = सत्य से सत्त्वादि त्रैगुण्य से, **आवृतम्** = ढका है अर्थात् पृथ्वी मय जगत् प्रलयकाल में भी सूक्ष्म रूप में रहता है। पृथिवी पद

पञ्चमहाभूतों का उपलक्षण है, सा = वह, भूमिः = दिव्य गुण वाली पृथ्वी, नः = हमारे लिए, उत्तमे = श्रेष्ठ, राष्ट्रे = राष्ट्र में, त्विषिं = तेज या दीप्ति और, बलम् = निर्भयता आदि शक्ति को, दधातु = धारण कराये।।८।।

हिन्दी अनुवाद—जो पृथ्वी सृष्टि के आदि में गतिशील या जलमय स्थान में सूक्ष्म रूप में थी जिसे विद्वानों ने माया रूप बतलाया और जिसके तत्त्व को केवल सर्वस्रष्टा भगवान् ने ही जाना और जिसका तत्त्व सत्यभूत तथा अमर है, वह भूमि हमारे भारतराष्ट्र में अदम्यता और शक्तिमत्ता का सञ्चार करे।।८।।

विशेष—यह मन्त्र भी मनुप्रोक्त 'अप एव ससर्जादौ—' का मूल है। सृष्टि का रहस्य विद्वान् नहीं जानते। लिखा भी है 'यां विदन्तः बहवो नैव विद्युः।' उसे तो एकमात्र जगन्नियन्ता ही जानता है, यह व्योमन् पद का आशय है।।८।

गायत्रीभाष्य—सा (यदः स्थाने तच्छब्दप्रयोगः) या भूमिः अग्रे सृष्ट्यादौ अर्णवे समुद्रे सलिलमधि जलोपरि विराजमाना आसीत्। मनीषिणः विद्वांसः मनुप्रभृतयः यां भूमिं मायाभिः स्वप्रभावैः अन्वचरन् प्रापुः। यस्याः पृथिव्याः हृदयं सत्येनावृतं सत् परमे व्योमन् महति व्योमनि परब्रह्मणि अधिष्ठितम् सा भूमिः नोऽस्माकम् उत्तमे राष्ट्रे भारतवर्षे त्विषिं तेजः बलं वीर्यञ्च दधातु स्थापयतु।।८।।

व्याकरण—अर्णवे = अर्णांसि जलानि सन्त्यस्मिन्निति अर्णवः, तस्मिन्। 'अर्णस् + व प्रत्यय' 'अर्णसो लोपश्च' इति सकारलोपः। अधिसलिलम् = 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' सूत्र से आधार (सलिल) की कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया का प्रयोग हुआ है। अन्वचरन् = अनु + चर् + लङ् प्र० पु०, बहुवचन। व्योमन् = व्येञ् संवरणे + मनिन्, वीयते संव्रियते आच्छाद्यते घनैः इति व्योम, पृषोदरादित्वात् साधुः त्विषिम् = त्विष् + कि। द्वितीया एकवचन।।८।।

टिप्पणी—इस मन्त्र के भाव को श्रीपाद सातवलेकर इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—'जो भूमि पहले समुद्र के गर्भ में थी जिसके बाहर-भीतर परमेश्वर व्याप्त है जो आकाश में स्थि है और जिसकी सेवा विचारवान् लोग विशेष प्रसंग में गुप्त प्रयत्नों से तथा कुशलता से करते हैं—वह हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में तेजस्विता विद्वत्ता, शूरता, शक्तिमत्ता इत्यादि गुण सदैव बढ़ाने वाली हो।'

इस मन्त्र में मातृभूमि की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उससे प्रार्थना की गई है कि वह हमारे राष्ट्र की तेजस्वी, शक्तिशाली और प्रभाववान् बनाए, क्योंकि इन्हीं गुणों से कोई राष्ट्र समृद्ध हो सकता है।।८।।

संहितापाठः

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।९।।

पदपाठः

यस्याम्। आपः परिऽचराः। समानीः अहोरात्रे इति।
अप्रऽमादम्। क्षरन्ति। सा। न। भूमिः। भूरिऽधारा।
पयः। दुहाम्। अथो इति। उक्षतु। वर्चसा।।९।।

अन्वय—यस्यां परिचराः समानीः आपः अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति, भूरिधारा सा भूमिः न पयो दुहाम् अथो (नः) वर्चसा उक्षतु।।९।।

शब्दार्थ—यस्याम् = जिस भूमि में, आपः = जल, परिचराः = सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। अर्थात् जल प्राप्ति सुलभ है—अरव का रेगिस्तान नहीं तथा, समानीः = वर्ण जाति से रहित होने से सबके लिए एक से मिठास वाले हैं, तथा जहाँ, अहोरात्रे = रात और दिन अर्थात् ग्रीष्म और शिशिर आदि ऋतुएँ, अप्रमादं = विना प्रमाद या निरन्तर रहते हैं—या जलप्रवाह रात-दिन, क्षरन्ति = वहते रहते हैं। सा = वह, भूरिधारा = अनेक जलधार वाली, भूमिः = पृथ्वी, नः = हमें, पयः = जल या दुग्धादि को, दुहाम् = देवे। अथो = किञ्च, नः = हमें, वर्चसा = तेजस्विता तथा दैन्यराहित्य में, उक्षतु = परिसिञ्चित करे या भर दे।।९।।

हिन्दी अनुवाद—जिस भूमि में सब ओर जल की उपलब्धि होती है तथा उस मधुर जल को प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति और पशु-पक्षी आदि यथेच्छ पान कर सकता है। जहाँ दिन-रात निरन्तर जलराशियाँ बहती रहती हैं। अनेक जलधारा वाली वह भूमि हमारे लिए जल का दोहन करे और हमें तेजस्वी बनाये।।९।

गायत्रीभाष्य—यस्यां भूमौ आपः अपामाधारभूता नद्यः परिचराः सर्वतः स्यन्दमानाः समानीः समान्यः स्वभावतः अहोरात्रे रात्रिन्दिवं क्षरन्ति वहन्ति सा भूरिधारा बहुप्रवाहयुक्ता भूमिः नोऽस्मभ्यं पयः दुहाम् दुग्धाम् अथो अपि च वर्चसा तेजसा अस्मान् उक्षतु उक्षतां सिञ्चतु।।९।।

व्याकरण—परिचराः = परितः सर्वतः चरन्ति इति परिचराः। 'चरेष्टः' इति टप्रत्ययः। अहोरात्रे = अहश्च रात्रिश्चेति अहोरात्रम् (द्वन्द्वसमासः) 'रात्राह्नाहाः पुंसि' तस्मिन्। भूरिधारा = भूरयः धाराः यस्यामिति भूरिधारा (वहुव्रीहिः) दुहाम्—दुह् धातु आत्मनेपद लोट् प्र०पु०ए०व०।।९।

टिप्पणी—कतिपय विद्वान् इस मन्त्र का भाव इस प्रकार स्पष्ट करते हैं "जिस प्रकार मेघों का जल प्राणिमात्र को एक समान मिलता है। उसी प्रकार जिनका उपदेश सभी के लिए एक समान है ऐसे परोपकारी, संन्यासी जिस भूमि पर दिन-रात उत्तम आचरण न छोड़ते हुए सदैव एक समान संचार करते रहते हैं और जो भूमि हमें अन्न-जल प्रदान करती है वह भूमि हमें तेजस्वी बनाये।"

इस मन्त्र में भी मातृभूमि से तेजस्वी तथा सम्पत्तिशाली बनाने की प्रार्थना की गई है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।।९।।

संहितापाठः

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।।१०।।

पदपाठः

याम्। अश्विनौ। अमिमाताम्। विष्णुः। यस्याम्। विऽचक्रमे। इन्द्रः। याम्। चक्रे। आत्मने। अनमित्राम्। शचीऽपतिः। सा नः। भूमिः। वि। सृजताम्। माता। पुत्राय। मे। पयः।।१०।।

अन्वय—(भूमिं) अश्विनौ अमिमाताम्, यस्यां विष्णुः विचक्रमे, शचीपति इन्द्रः याम् आत्मने अनमित्रां चक्रे, सा नः माता भूमिः पुत्राय मे पयः विसृजताम्।।१०।।

याम् (भूमि) = जिस भूमि में, **अश्विनौ** = सूर्य-चन्द्र, रात-दिन, सुर असुर **अमिमाताम्**=साथ-साथ रहते हैं। **यस्याम्** = जिस भूमि में, **विष्णुः** = विष्णु देवता ने **विचक्रमे**=क्रमण किया अर्थात् अपने पैरों से नापकर पृथ्वी को पवित्र किया। **याम्**= जिस

पृथ्वी के, शचीपतिः=शक्तियों के स्वामी, इन्द्रः= इन्द्र ने, आत्मने=अपने लिये अनामित्रां=शत्रुरहित, चक्रे= बनाया, सा=वह, नः=हमारी, माता=मातृस्थानीय भूमिः=भारतभूमि, मे=मुझ, पुत्राय=पुत्र के लिए, पयः= जल या दुग्ध की विसृजताम्=वर्षा करे।।१०।।

हिन्दी अनुवाद— जहाँ पर विरोधी ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुयें साथ-साथ रहती हैं। जहाँ पर भगवान् विष्णु ने अपना पदन्यास किया (विक्रमण किया), जिसको शचीपति इन्द्र ने अपने लिए शत्रुरहित बनाया अर्थात् स्वर्गाधिपति इन्द्र की भी जो भूमि स्पृहणीय बनी, वह हमारी मातृभूमि हम पुत्रों के लिए दुग्धादि पौष्टिक पदार्थ प्रदान करे।।१०।।

गायत्रीभाष्य— याम् अस्विनौ देवौ अमिमाताम् निर्मितवन्तौ, यस्यां विष्णुर्वामनावतारं धृत्वा विचक्रमे विविधं पाद विक्षेपं कृतवान्, शचीपतिः इन्द्रः आत्मने स्वहिताय याम् अनमित्रां शत्रुरहितां चक्रे कृतवान् नोऽस्माकं माता मातृवन्माननीया सा भूमिः मे मम पुत्राय पयः दुग्धं विसृजताम् ददातु।।१०।।

व्याकरण—अमिमाताम्— मा माने, आत्मनेपद, लङ्, प्र0 पु0 द्विवचन। विचक्रमे— वि+क्रम् पादविक्षेपे, लिट्, प्र0 पु0, ए0 व0। अनमित्राम्—न मित्राणि इति अमित्राणि। न विद्यन्ते अमित्राणि यस्यां सा अनमित्रा, ताम्। नञ् समास।।१०।।

टिप्पणी— जिस मातृभूमि पर परोपकाररत देवताओं ने उद्योग कर दुष्ट शत्रुओं का संहार किया है और उसके लिये तरह-तरह के पुरुषार्थ किये हैं, वह हमारी मातृभूमि जिस प्रकार माता अपने बच्चे को दुग्ध पिला कर पालन-पोषण करती है उसी प्रकार से हमें समस्त उपयोगी पदार्थों को प्रदान कर हमारा पालन-पोषण करे और समृद्ध बनाये। प्रस्तुत मन्त्र में त्र्यवसाना षट्पदा जगती नामक छन्द है।।१०।।

संहितापाठः

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।

बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।

अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्।। ११।।

पदपाठः

गिरयः ।ते। पर्वताः ।हिमऽवन्तः। अरण्यम्। ते। पृथिवि ।स्योनम्। अस्तु । बभ्रुम्। कृष्णाम्। रोहिंणीम्। विश्वऽरूपाम्। ध्रुवाम्। भूमिम्। पृथिवीम्। इन्द्रगुप्ताम्। अजीतः। अहतः । अक्षतः। अधि। अस्थाम् । पृथिवीम् । अहम्।।११।।

अन्वय— हे पृथिवि! ते गिरयः, (ते) हिमवन्तः पर्वताः, ते अरण्यं (सर्वमिदं) स्योनमस्तु। बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां पृथिवीम् इन्द्रगुप्ताम् ध्रुवां पृथिवीं भूमिं अहम् अजीतः अहतः अक्षतः (सन्) अध्यष्ठाम्।।११।।

शब्दार्थ— हे पृथिवि=हे मातृभूमे!, ते=तेरे, पर्वताः=शिखर वाले, हिमवन्तः=वर्फीले (हिमाच्छादित), गिरयः=पहाड़, ते=तुम्हारे, अरण्यम्=वन, बभ्रुं=मटियाली, पाटला या गैरिक वर्ण की, कृष्णाम्=काली, रोहिणीम्=लोहित वर्ण वाली या श्वेत वर्ण वाली होने से, विश्वरूपाम्=अनेक रूपों वाली, इन्द्रगुप्ताम्=धार्मिक राजा से रक्षित, पृथिवीम्=विस्तृत, ध्रुवां=स्थिर, पृथिवीम्=प्रशंशित (देवभूमि होने से), भूमिम्=भारतीय शस्य भूमि को, अहम्=मैं, अजीतः अक्षतः= क्षति भूकम्पादि तथा ईतियों (छः प्रकार की ईतियों) की शक्तिहीन, अध्यष्ठाम्=अधिष्ठित होऊँ।।११।।

हिन्दी अनुवाद— हे राष्ट्रभूमे! तेरे उच्च शिखर वाले पर्वत हिमाच्छादित शिखर और घने जङ्गल हमें सुखदायी हों एवं विविध धातुमयी, राज्यपालित इस स्थिर, विस्तृत पृथ्वी पर हम अजेय, अधृष्य, अनाक्रान्त होकर शासन करें।।११।।

विशेष— गिरयः के साथ अस् धातु का सन्तु ऐसा वचन व्यत्यय करना चाहिये। ईतियाँ इस प्रकार गिनायी गयी हैं— 'अतिवृष्टिरनावृष्टिमूर्षिकाः शलभाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयः स्मृताः।।११।।

गायत्रीभाष्य— हे पृथिवि! ते तव त्वत्सम्बन्धिन; गिरयः क्षुद्रपर्वताः हिमवन्तः हिमयुक्ताः पर्वताः महान्तो हिमालयादयः अरण्यम् वनम् एते स्योनमस्तु (वचनव्यत्ययः) स्नोनानि अस्माकं सुखकारिणः सन्तु। बभ्रुं क्वचित्पिङ्गलवर्णां कृष्णां क्वचित् श्यामवर्णां रोहिणीं क्वचित् रक्तवर्णां पृथिवीं स्वभावोऽतिविस्तीर्णाम् इन्द्रगुप्तां परमेश्वरपालितां भूमि केनापि शत्रुणा अजीतः अजितः अहतः अहिंसित; अक्षतः अकृतव्रण सन् अहम् अध्यष्ठाम्

अधिष्ठितवान् पृथिवीशब्दस्याभ्यासोऽतिशयार्थः अभ्यासे भूयां समर्थ मन्यन्ते' इति यास्कोक्तेः।।११।।

व्याकरण— हिमवन्तः – हिमं विद्यते येषां येषु वेति हिमवन्तः। हिम+ मतुप् अक्षतः—नञ्+क्षण्+क्त। अहतः— नञ्+हन्+क्त। अध्यष्ठाम्—अधि+अस्थाम्, स्थ+लुङ्, उ0 पु0 ए0 व0। लोडर्थे लुङ्। अधि के प्रयोग में 'अधिशीङ् स्थासाकर्म सूत्र से बभ्रु कृष्णाम् इत्यादि पदों में द्वितीया विभक्ति है। अजीतः='जि जये' धा से क्त प्रत्यय यहां छान्दस दीर्घ है।।११।।

टिप्पणी— हे मातृभूमि तुझ पर जो पर्वत और सघन अरण्य हैं वे हमारे लिये सुखकारी होंव। कहने का भाव यह है कि पर्वतों और जंगलों में तुम्हारे शत्रु न रहें, असदाचरण में निरत लोगों का विनाश हो, तू उत्तम धन-धान्य, वनस्पति आदि से युक्त होकर हम सबकी रक्षा करे। हम लोग शत्रुओं के द्वारा परास्त न होते हुये आनन्दपूर्वक निवास करें, उच्चपद को प्राप्त करें और अपने राष्ट्र को स्वाधीन रक्खें।

इस मन्त्र में मातृभूमि से राष्ट्र को स्वाधीन रखने के लिये प्रार्थना की गई है।।११।।

संहितापाठः

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।।१२।।

पदपाठः

यत् । ते मध्यम् । पृथिवि । यत् । च । नभ्यम् । याः । ते।
ऊर्जः । तन्वः । सम्ऽबभूवुः । तासु । नः धेहि । अभि । नः । पवस्व ।
माता । भूमिः । पुत्रः । अहम् । पृथिव्याः । पर्जन्यः । पिताः । सः । ऊँ
इतिं । नः पि प र्तु ।।१२।।

अन्वय— हे पृथिवि, यत् ते मध्यम् यच्च नभ्यम् (अस्ति), याः ते ऊर्जः तन्वः संबभूवुः तासु नः धेहि, नः अभि पवस्व। भूमिः (मे) माता (अस्ति), अहं पृथिव्याः पुत्र; (अस्मि), पर्जन्यः (मे) पिता (अस्ति), सः नः पिपर्तू ।।१२।।

शब्दार्थ— हे पृथिवि!=हे प्रथनशीले, यत्= जो, तो = तुम्हारा, मध्यम्= मध्यवर्ती, भूमध्यवर्ती शरीर है तथा, नभ्यम्=नाभिस्थानीय केन्द्रभूत, या भूमध्यरेखा या विषुवान् रेखा का शरीर है तथा, याः= जो भी, तो=तेरी, ऊर्जः=ऊर्जा वाले या शक्तिवाले, तन्वः=शरीर, संवभूवुः= हैं। तासु=उन स्थानों में (स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग तनु शव्द के स्त्रीलिङ्ग होने से किया है।) नः =हम पुत्रों को, धेहि=दे तथा, नः=हमें, अभिपवस्व=सब प्रकार से पवित्र या श्रेष्ठ बना दे। तू, भूमिः= वहुगुण वाली ही मेरी, माता= माता है, तथा अहम्=मैं, पृथिव्याः=पुत्रों को सब तरह बढ़ाने वाली सम्पन्न करने वाली तुझ माता का, पुत्रः पुत्र हूँ। पर्जन्यः=मेघ रूपी इन्द्र, नः=हमारा अर्थात्, तेरा और मेरा, सः=वह, पिता=पालयिता, उ=निश्चिय से, नः=हमें, पिपर्तु=पूर्ण करता रहे अर्थात् हे मां तू जितना ही देगी उतनी ही या उससे अधिक पर्जन्य द्वारा मुझे प्राप्त हो जायेगा।।१२।।

हिन्दी अनुवाद— हे पृथिवि! तेरे भूगर्भ में और मध्यवर्ती केन्द्र में जो शरीर की स्थिति है उसमें हमें लाभ प्राप्त कराओ। हमें सब प्रकार से पवित्र या श्रेष्ठ बना दो। मैं तुझ पुत्रों को बढ़ाने वाली माता का पुत्र हूँ। पर्जन्य अर्थात् इन्द्र हमारा पालक है।।१२।।

गायत्रीभाष्य— हे पृथिवि! ते तव यत् मध्यं स्थानम् यञ्च नभ्यं सुगुप्तो नाभिप्रदेशः ते तत्र तन्वः शरीरस्य या ऊर्जः पोषकान्नरसाः तासु नोऽस्मान् धेहि, नोऽस्मान् पवस्व पावय। भूमिः माता जगन्निर्मात्री अहं पृथिव्या पुत्रः, पर्जन्यः पिता पालयिता, स उ एव नोऽस्मान् पिपर्तु पालयतु।।१२।।

व्याकरण— तन्वः— वधू के समान तनू (स्त्रीलिङ्ग) शव्द का प्रथमा वहुवचन रूप। ऊर्जः— इसका विशेषण है, अतः ऊर्जः का अर्थ तेजोयुक्त होगा। नभ्यम्— नाभौ भवम्, तस्यै हितमिति वा विग्रहः। यत् प्रत्यय तथा नाभि को नभादेश। धेहि—धा धारणे, लोट्, मध्यम पु0, एकवचन। पवस्व-पू (=पवित्र करना), लोट् म0 पु0, ए0 व0 आत्मनेपदम्। पर्जन्यः— पिपर्ति जनान् इति पर्+जन्+यत्। पिपर्तु -पृ पालनपूरणयोः, जुहोत्यादिः, लोट् प्र0 पु0 ए0 व0। श्लु तथा द्वित्व। पुत्र—पुं नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः। पुत् +त्रा+क।।१२।।

टिप्पणी— हे मातृभूमि जो तुम्हारा मध्य स्थान है और नाभि स्थान है उनमें हमें धारणा करो और जो तुम्हारे अन्न-रसादि पोषक पदार्थ हैं वे हमें सदैव प्राप्त होते रहें। हे भूमि! तू हमारी माता है हम तेरे पुत्र हैं। जिस प्रकार माता अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करती हुई पुत्र की रक्षा करती है उसी प्रकार हमारा पालन-पोषण करें। पर्जन्य मेघ हम सबका पालक पिता है वह नियमित वृष्टि के द्वारा हमारी रक्षा करे।

इस मन्त्र में प्रयुक्त 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः पद अत्यन्त ही महत्त्व रखता है। इसका भाव यह है कि हमारी देश भूमि ही हमारी माता है और हम सब उस मातृभूमि के पुत्र हैं। इससे परस्पर बन्धुत्व भावना तथा देशभक्ति अत्यन्त पुष्ट होती है। भूमि हमारी माता है और माता की तरह ही हमारा पालन-पोषण करती है। उस पर उत्पन्न होने वाले सभी हमारे बन्धु हैं। इस प्रकार मातृभूमि तथा देशबन्धुओं से जहाँ हमें संरक्षण प्राप्त है वहीं हमारे भी उनके प्रति कुछ कर्तव्य हैं। इन कर्तव्यों में सेवाभाव सर्वोपरि है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभूमि तथा देश बन्धुओं के साथ सेवव्रत को ग्रहण कर ले तो उस राष्ट्र का कल्याण अवश्यम्भावी है। इस मन्त्र से हमें यह प्रेरणा लेनी चाहिये कि हम मातृभूमि तथा देशबन्धुओं की सेवा में लगें। मातृभूमि के सम्बन्ध में ऋग्वेद का निम्नलिखित मन्त्र अवलोकनीय है—

'ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उदिभदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधः।

सृजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्त्या आ नो अच्छा त्रिगातन।।' (ऋग्वेद 5।59।6)

'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।' (ऋग्वेद 5।60।5)

"सम्पूर्ण (पृश्नि मातरः) मातृ भूमि को माता मानने वाले सब (मर्त्याः) मनुष्य सच्चे कुलीन हैं। उनमें न कोई (ज्येष्ठ) श्रेष्ठ है न कोई कनिष्ठ है और न कोई मध्यम है। उन सबका स्थान समान है। वे सब (उद्-भिदः) अपने ऊपर के दबाव को भेदकर उठने वाले हैं। सबका विचार एक-सा है अर्थात् वे (भ्रातरः) बन्धु ही हैं। वे अपने (सौभगाय) धन के बढ़ाने के लिये (सं—वावृधुः) सब मिलकर प्रयत्न करते हैं।"

इसी प्रकार एक मन्त्र में इस प्रकार कहा गया है कि मातृभूमि सरस्वती (मातृसंस्कृति) और मातृभाषा ये तीन सुख देने वाली देवता है। ये सदैव अन्तःकरण में रहें—

'इला सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।

बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः।।12।।

संहितापाठः

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्त भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।

यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्राः आहुत्याः पुरस्तात्।

सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना।१३।।

पदपाठः

यस्याम् । वेदिम् । परिगृह्णन्ति । भूम्याम् । यस्याम् । यज्ञम्।
तन्वते । विश्वऽकर्माणः। यस्याम् । मीयन्ते । स्वरवः । पृथिव्याम्।
ऊर्ध्वाः । शुक्राः । आऽहुत्याः । पुरस्तात् । सा । नः । भूमिः । वर्धयत् ।
वर्धमाना।।१३।।

अन्वय— यस्यां भूम्यां (जनाः) वेदिं परिगृह्णन्ति, यस्यां विश्वकर्माणः यज्ञं तन्वते, यस्यां पृथिव्याम् आहुत्याः पुरस्तात् ऊर्ध्वाः शुक्राः स्वरवः मीयन्ते, वर्धमाना सा भूमिः नः वर्धयत् ।१३।।

शब्दार्थ— यस्याम्=जिस, भूम्याम्=भूमि में, वेदिम्=यज्ञ वेदी को, परिगृह्णन्ति=बनाते हैं। यस्याम्=जिसमें, यज्ञम्=अग्निष्टोमादि यज्ञों को, विश्वकर्माणः = अनेक प्रकार के यज्ञ कर्म करने वाले याज्ञिक या मुनिगण, तन्वते=करते हैं, यस्याम्=जिस, पृथिध्याम्=भूमि में, स्वरवः=यज्ञ -यूप या विद्युत्, मीयन्ते=प्रविष्ट होते हैं या समा जाते हैं। और जो कि यूप, ऊर्ध्वाः=उन्नत होते हैं, शुक्राः=दीप्ति वाले होते हैं तथा, आहुत्याः=यज्ञ की आहुति के या वृष्टि यज्ञ की आहुति के पुरस्तात्=बाद में (प्रविष्ट किये जाते हैं), सा=वह, भूमिः=पृथ्वी, वर्धमाना=यज्ञादि वर्षा के द्वारा समृद्ध होती हुई, नः=हमें वर्धयत्=बढ़ाये।।१३।।

हिन्दी अनुवाद– जिस भारत भूमि में यज्ञवेदी का निर्माण होता है और जहाँ पर विविध यज्ञों का सम्पादन किया जाता है। जहाँ पर ऊँचे-ऊँचे चमकते हुए यज्ञयूप गाड़े जाते हैं। जो कि उन्नत तथा दीप्ति वाले होते हैं तथा यज्ञ की आहुति के बाद प्रविष्ट किये जाते हैं। वह मातृभूमि हमें बढ़ाये और बढ़े।।१३।।

विशेष— मनु ने कृष्णमृग के आधार पर यज्ञकर्मयोग्यता केवल भारत-भूमि में बतलाई है। 'स्वरूः पुमान् यूपखण्ड भिदुरेऽप्यधरे क्षरे' इति मेदिनी। 'वेदिः स्यात्पण्डिते पुमान्। स्त्रियामङ्गुलिमुद्रायां स्यात्परिष्कृतभूतले' इति च मेदिनी। 'वेदिःस्यात्पण्डिते पुमान्। स्त्रियामङ्गुलिमुद्रायां स्यात्परिष्कृतभूतले' इति च मेदिनी। लोक तथा वेद में ऐकार्थ्य होने से मेदिनी का प्रमाण दिया है।।१३।।

गायत्रीभाष्य— विश्वकर्माणः यज्ञाद्भवति पर्जन्यः इत्यादिगीतोक्त्यनुसारेण जगन्निर्मातारः ऋत्विग्यजमानाः यस्यां भूम्यं वेदिं परिगृह्णन्ति कुर्वन्ति यज्ञञ्च तन्वते

विस्तारयन्ति। यस्यां पृथिव्याम् आहुत्याः पुरस्तात् ऊद्ध्वाः उन्नताः शुक्राः मनोहराः स्वरवः यज्ञस्तम्भाः मीयन्ते निखन्यन्ते स भूमिः वद्र्धमाना समृद्धा सती नोऽस्मान् वद्र्धयत् धन—पुत्रादिभिर्वर्धयेत्।।१३।।

व्याकरण—वेदिम्— विन्दन्ति लभन्ते यज्ञकर्म यस्यां सा, ताम्। तन्वते—'तनु विस्तारे' लट् प्र० पु० ब० व०। स्वरवः— स्वरति निखननसनये यज्ञाग्निना उपतापयति यजमानमिति स्वरुः। स्वृ+उ। वर्धमाना—वृध्+शानच्+टाप्। वर्धयत्—लेट्, प्र० पु० ए० व० ।१३।।

टिप्पणी— इस मन्त्र का भावार्थ कतिपय विद्वान् इस प्रकार लिखते हैं— जिस भूमि के लोग यज्ञ की वेदी से पास आकर हवन करने के लिये तैयार रहते हैं, जिसमें लोग सदैव परोपकार और उन्नति के कार्य करते हैं तथा भाषण और उपदेश करते हं, हमारे द्वारा उन्नति पाने वाली वह हमारी मातृभूमि हमारे लिये सब प्रकार से उन्नति का कारण बने। इस मन्त्र में भी धन-धान्यादि से समृद्ध होने की प्रार्थना की गई है।।१३।।

संहितापाठः

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि।।१४।।

पादपाठः

यः । नः। द्वेषत् । पृ थि वि । यः । पृतन्यात् । यः अभिऽदासीत् ।
मनसा । यः वधेन । तम् । नः । भूमे । रन्धय । पूर्वऽकृत्वरि ।।१४।।

अन्वय— (हे) पृथिवि यो नः द्वेषत्, यः पृतन्यात्, यो मनसा अभिदासात् यः वधेन नः (अभिदासात्) हे पूवकृत्वरि भूमे! तं रन्धय।।१४।।

शब्दार्थ— पृथिवि = हे पृथ्वी, यः = जो, नः = हमारे प्रति, द्वेषत् = द्वेष भाव रक्खे, यः = जो, पृतन्यात् =(हमसे) लड़े, यः = जो, मनसः = मन से (हमारे प्रति), अभिदासात् = अनिष्ट चिंतन करे अर्थात् हमारे विनाश के लिये दुष्ट योजनाएँ बनाये, यः = जो (हमारी), वधेन = हत्या के द्वारा, (अभिदासात् = हिंसा करे), तम् = उसको, पूर्वकृत्वरि = हे पहले से ही शत्रुओं का विनाश करने वाली, भूमे = भूमे, (तम्=उसको), रन्धय = नष्ट करो।।१४।।

हिन्दी अनुवाद— हे मातृभूमे! तुझ पर निवास करने वाले हमलोगों से जो द्वेष करे या लड़ाई करे या मन से हानिकारक योजना बनाए या जो हमें मारना चाहे, हे पहले से ही शत्रुओं का विनाश करने वाली भूमि! उन सबका विनाश कर दे।।१४।।

गायत्रीभाष्य— हे पृथिवि! यः शत्रुः नोऽस्मान् द्वेषत् द्विष्यात् यञ्च पृतन्यात् अस्माभिः सह पृतनां संग्राममिच्छेत् यः अस्मान् मनसाऽभिदासात् अभिदासेत् हिंसितुमिच्छेत्, यः वधेन वधं कुर्तमुद्युक्तः नोऽस्मान् ते सर्वं शत्रु हे पूर्वकृत्वरि भूमे रिपुसंहारिणि भूमे! रन्धय विनाशय।।१४।।

व्याकरण— द्वेषत्—द्विष् दातु लेट् लकार का प्र० पु० ए० व०। पृतन्यात्—पृतनामिच्छति पृतन्यति क्यच्, लिधिलिङ् प्र० पु० ए० व०। अभिदासात्—अभि+दसु उपक्षये, लेट लकार, प्र० पु० ए० व०। रन्धय—रध् हिंसासंराध्यो;+णिच् लोट् म० पु० ए० व०। पूर्वकृत्वरि—पूर्व+कृ+क्वरप्। पूर्वमेव करोति तच्छीला इति विग्रहः ।।१४।।

टिप्पणी— हे मातृभूमि! जो लोग हमसे द्वेष रक्खें, जो हमारे साथ युद्ध करें, जो हमारे विनाश के लिए कार्य करें, जो हमारे वध के लिये समुद्यत हों, जो हमें परतन्त्र बनाने के इच्छुक हों, उन सभी शत्रुओं का तू विनाश कर दे। इस मंत्र में मातृभूमि से शत्रुओं के विनाश की प्रार्थना की गई है। प्रस्तुत मन्त्र में बृहती नामक छन्द है।।१४।

संहितापाठः

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्चमानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।।१५।।

पदपाठः

त्वत् । जाताः । त्वयि । चरन्ति । मर्त्याः । त्वं । बिभर्षि । द्विऽपदः । त्वम्।
चतुष्पदः । तव । इमे । पृथिवि । पञ्च । मानवाः । येभ्यः । ज्योतिः। अमृतम् । मर्त्येभ्यः । उत्ऽयन् । सूर्यः । रश्मिभिः । आऽतनोति ।।१५।।

अन्वय— हे पृथिवि! त्वज्जाताः मर्त्याः त्वयि चरन्ति। त्वं द्विपदः बिभर्षि, त्वं चतुष्पदः बिभर्षि। इमे पञ्च मानवाः तव (एव सन्ति) येभ्यः मर्त्येभ्यः उद्यन् सूर्यः रश्मिभिः अमृतं ज्योतिः आतनोति ।।१५।।

शब्दार्थ—पृथिवि=हे पृथिवी, त्वज्जाताः=तुमसे उत्पन्न हुए, मर्त्याः=जीव, त्वयि=तुझ भूमि पर ही, चरन्ति=विचरण करते हैं। अर्थात् अनेक प्रकार के भोग भोगते हैं। त्वम्=तू, द्विपदः=मनुष्यादि दो पद वाले जीवों को, च = और, चतुष्पदः =चौपायों को, बिभर्षि=धारण करती है, इमे=ये, पञ्च=पाँच प्रकार के, मानवाः=मनुष्य (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र और सङ्कर अम्बष्ठादि अथवा पशु, पक्षी, जलचर, नभश्चर और क्षुद्र अदृष्ट कीटादि) हैं। येभ्यः=जिन, मर्त्येभ्यः=मनुष्यादि जीवों के लिए, उद्यन् = प्रतिदिन उदित होता हुआ, सूर्यः = सूर्य, रश्मिभिः =अपनी तेजोमय किरणों से, अमृतम्=अमरता को देने वाली, ज्योतिः=ज्योति को, आतनोति=प्रदान करता है अर्थात् भूनिष्ठ (भूमिस्थित) प्राणी तुम्हारे कारण सूर्य के प्रकाश को ध्यान करके अमर बन जाते हैं।।१५।।

हिन्दी अनुवाद— हे भूमे! तुझसे जन्म लेने वाले मरणाधर्मा प्राणी तुझमें रहते हुए तुझमें ही लीन हो जाते हैं। ये पाँच मानव तुम्हारे ही हैं। उन प्राणियों के लिए उदित होता हुआ सूर्य अपने अमर ज्योतिर्मय प्रकाश को प्रदान करता है। यह सब तुम्हारी की कृपा है।।१५।।

गायत्रीभाष्य— हे पृथिवि! त्वत् त्वत्तो जाता मर्त्याः त्वयि चरन्ति। त्वं द्विपदः मनुष्यान् चतुष्पदः पशून् बिभर्षि धारयसि। हे पृथिवि! इमे पञ्च मानवाः पञ्चविधाः ब्राह्मण—क्षत्रिय -वैश्य-शूद्र-निषादाः मनुष्याः तथा त्वत्सम्बन्धिनः सन्ति येभ्यो मर्त्येभ्यः उद्यन् सूर्यः स्वरश्मिभिः स्वकिरणैर्ज्योतिः प्रकाशम् आतनोति विस्तारयति।।१५।।

व्याकरण— 'मर्त्याः—मृङ् प्राणत्यागे' से क्यप्, तुक् तथा बाहुलकाद् गुण। बिभर्षि— भृ धारणपोषणयोः लट्, म० पु०उ ए० व०। उद्यन्—उत्+इ (गतौ) + शतृ, पुँल्लिङ्ग प्रथमा ए० व०। आतनोति— आ+तन् विस्तार् लट् प्र० पु०, ए० व०।।१५।।

टिप्पणी— हे मातृभूमि! तुमसे उत्पन्न हुए हमलोग तुम्हारे ही आधार से समस्त व्यवहार करते हैं। तू समस्त मनुष्यों, पशु-पक्षियों और प्राणियों को धारण कर उनका पालन-पोषण करती है। हमारे जीवन के लिये प्रकाशशील सूर्य सदैव उदित होकर अपनी अमृतमय किरणों के द्वारा सारे संसार का संरक्षण करता है। वे हम पाँच प्रकार से ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज अथवा विद्वान्, वीर, व्यापारी, कारीगर तथा सेवक तुम्हारी सेवा करने की इच्छा करते हैं।।१५।।

संहितापाठः

ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्।।१६।।

पदपाठः

ताः । नः । प्रऽजाः। सम् । दुहताम् । सम्ऽअग्राः । वाचः । मधु। पृथिवि । धेहि। मह्यम् ।।१६।

अन्वय— हे पृथिवि ताः समग्राः प्रजाः नः वाचः मधु संदुहताम् मह्यं धेहि ।।१६।।

शब्दार्थ— हे पृथिवि=हे भूमे, ताः=वे (तुझ पर उत्पन्न हुए) **समग्राः**=समस्त, **प्रजाः**=मानवादि जीव, **नः**=हमारे लिए, **वाचः**=अपनी वाणी के द्वारा, **मधु**=मधुर वचन, **संदुहाताम्**=बोलें या निकालें तथा उसे आप, **मह्यम्**=मुझ में, **धेहि**=स्थित करायें अर्थात् उस मधुर वणी को सुनकर मैं सदा तुष्ट और हृष्ट होता रहूँ।।१६।।

हिन्दी अनुवाद— हे माता पृथिवि! संसार के प्राणिमात्र मेरे लिये मधुर भाषण करें। जिस मधुर वाणी से या प्रशंसा से मैं सदा पुष्ट होता रहूँ अर्थात् बढ़ता रहूँ।।१६।।

गायत्रीभाष्य— हे पृथिवि! ताः रश्मयः नोऽस्मभ्यं प्रजाः सन्ततीः समग्रा वाचः समस्तवेदादिशास्त्रजन्यं ज्ञानं संदुहतां ददतु। हे पृथिवि! त्वं मह्यं मधु मधुरमन्त्ररसादिकं धेहि देहि।।१६।।

व्याकरण—संदुहतम्—सम्+दुह् धातु लोट् लकार प्र0 पु0 ए0 व0। मधु='मदी हर्षे' धातु से 'नु' प्रत्यय तथा दकार को धकार। माद्यति येन तत्। अथवा मन्यते इति—मन्+उ तथा नकार को धकार। धेहि—' धा धारणपोषणयो;' धातु लोट् लकार म0 पु0 ए0 व0 ।।१६।।

टिप्पणी— इस मन्त्र में प्रार्थना की गयी है कि हे मातृभूमि! हम सब लोग परस्पर सत्य कल्याणकारिणी और मधुर बातचीत करें। असत्य, अहितकारी और कटु वचन न बोलें। तू हमें ऐसी शक्ति दे कि हम सब मधुरभाषी बन जावें। यहाँ त्रिष्टुप् छन्द है।।१६।।

चरैवैति, चरैवैति

(ऐत० ब्रा० ७.३३)

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र उच्चरतः सखा, चरैवैति॥ १॥

राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र राजकुमार रोहित जब चलते-चलते थक कर बैठ गये, तो उनसे उनके पुरोहित ने कहा—

हे रोहित! हमने विद्वानों से सुना है कि श्रम से थककर चूर हुए बिना किसी को धन-सम्पदा प्राप्त नहीं होती। वैठे-ठाले [समय वितानेवाले आलसी] व्यक्ति को पाप धर दवाता है। इन्द्र उसी का मित्र है, जो बराबर चलता रहता है— थककर बैठ नहीं जाता। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

पुष्पिण्यौ चरते जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताञ्चरैवैति, चरैवेति॥२॥

—जो व्यक्ति चलता रहता है, उसकी पिण्डलियाँ (जाँघें) फूल देती हैं अर्थात् उसकी सेवा अन्य व्यक्ति करते हैं। उसकी आत्मा वृद्धिगत होकर आरोग्यादि फल की भागी होती है तथा इसके सारे पाप और अपराध सो जाते हैं अर्थात् छूट जाते हैं। अतः तुम भी निरन्तर चलते रहो, चलते रहो।

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवैति, चरैवैति॥३॥

— जो बैठा रह जाता है, उसका भाग्य और ऐश्वर्य भी बैठ जाता है, जो उठकर खड़ा हो जाता है, उसका भाग्य भी ऊपर उठ जाता है। जो सोता रहता है, उसका भाग्य

भी सो जाता है, और चलनेवाले का भाग्य निरन्तर आगे बढ़ता रहता है, अतः हे रोहित तुम चलते रहो, चलते रहो।

कलिः शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठँस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरँश्चरैवैति, चरैवैति।।४।।

[इस मन्त्र में युगों की नयी व्याख्या की गई है, जो बहुत प्रेरक है] जो सोता रहता है वह कलियुग की स्थिति में रहता है, जो [निद्रा त्यागकर] अँगड़ाई और जँभाई लेने लगता है वह द्वापर की स्थिति में रहता है। जो उठकर खड़ा हो जाता है, वह त्रेता युग की स्थिति में आ जाता है और जो [आशा, उत्साह और विश्वास से सम्पन्न होकर] चलने लगता है अर्थात् काम में संलग्न हो जाता है वह कृतयुग अर्थात् सत्ययुग की स्थिति में पहुँच जाता है। अतः चलते रहो, चलते रहो।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरँश्चरैवैति, चरैवैति।।५।।

[उठकर और कमर कसकर] चल पड़ने वाले व्यक्ति को [जीवन में] माधुर्य की प्राप्ति होती है। निरन्तर चलते हुए ही व्यक्ति गूलर जैसे स्वादिष्ट फलों को प्राप्त करता है। भगवान् सूर्य के श्रम को देखो [जो निरन्तर चलते रहते हैं और एक क्षण के लिए भी] आलस्य नहीं करते। [इसलिए हे रोहित! यदि जीवन में कुछ पाना है तो] चलते रहो, निरन्तर चलते रहो।

टिप्पणी— उपर्युक्त मन्त्र ऐतरेय ब्राह्मण के 'ऐन्द्र महाभिषेक' प्रकरण से लिये गये हैं। ये गाथा शैली में निबद्ध हैं। राज्याभिषेक के अनुष्ठान में इन मन्त्रों को राजा को सुनाया जाता था, ताकि वह निरन्तर कर्मरत रहे। वस्तुतः ये सभी मन्त्र हमारे पुरुषार्थ के उत्प्रेरक हैं। इनमें अलस्य, अकर्मण्यता और निठल्लेपन से सावधानी पूर्वक बचे रहने का सन्देश है।

"चरण व्यूह" में उल्लेखित
ऋग्वेद की 21 शाखायें हैं (पृष्ठ सं. 8, १८)
जिनमें से मात्र (शाकल) शाखा ही मिलती है।

9090099234

↓

प्रशांत शुक्ल

B.A. II Psychology